धारा...84 ग्रंथांक...297

पाप<पुण्य<मोक्ष<(शुद्ध) गीताञ्जली

(गद्य-पद्यमय)

आचार्य कनकनन्दी

पुण्य-स्मरण

गृह प्रवेश वास्तु विधान के उपलक्ष्य में

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. श्रीमती वीणा-मुकेश कुमार जी, चोखचन्द जी गाँधी सागवाड़ा
2. श्रीमती आनल-विपिन जी, राजमल जी शाह सागवाड़ा
3. श्रीमती सुलोचना-फौजमल जी शाह सागवाड़ा
4. श्री पंकज कुमार, आशीष कुमार-जयन्तिलाल जी गलालिया सागवाड़ा

ग्रंथांक-297 संस्करण-प्रथम 2018

प्रतियाँ - 500 मूल्य -101/-

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, 55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

आध्यात्मिक-शक्ति-गीताञ्जली की समीक्षा

समीक्षकः मुनिप्रवर ध्यानदिवाकर जयकीर्ति महाराज

आध्यात्मिक-शक्ति-गीताञ्जली-धारा-67 ग्रन्थांक-280 एक जीवनोपयोगी संग्रह। प. पू ज्ञानाराधक सूरी द्वारा प्रस्तुत कृति को अगर कोई भी इंसान 10 बार पढ़ ले तो उसे अपना जीवन एवं अपनों का जीवन तथा जीवन में आवश्यक परिवर्तन के नियम समझ में आ जायेंगे।

अपूर्ण और बिखरें हुये सामान को जैसे एक कुशल कारीगर सुव्यवस्थित कर देता है उसी प्रकार आज की दौड़ती-भागती उछलती-कूदती जिन्दगी को सुव्यवस्थित करने में ज्ञान-शिल्पी, शोध-परिपक्व आचार्य भगवन् श्री कनकनंदी जी गुरुदेव की यह कृति महती भूमिका निभाती है।

धन्य है आपका यह ज्ञान-श्रम जो कि सार्वभौमिक रूप से जीवन के परिश्रम को सार्थक कर देगा। धन्य है आपकी जीव कल्याण की भावना जिससे प्रेरित हो आप श्री ने ''जीवन जीने की शैली'' को विभिन्न दृष्टिकोणों से सजाया-संवारा है।

धन्य है आपका आत्म कल्याण की भावना से परिपूर्ण ज्ञान भंडार एवं सत् साहित्य जो की आध्यात्म के आकाश एवं भावना के समुन्दर सा लगता है।
धन्य है वे जीव जिन पर आपकी कृपा बरसती है। धन्य है उन जीवों का सौभाग्य जिन्हें आपकी सेवा का सौभाग्य प्राप्त होता है। धन्य है वह भूमि जहाँ आपके पावन श्री चरण पृथ्वीकायिकों का भला कर देते हैं। धन्य है वह समय जो आपके सानिध्य में बीतकर अतीत की कालिमा को धोकर भविष्य को प्रकाशमान कर देता है।

धन्य है गुरुदेव श्री, धन्य आपका ज्ञान।
धन्य हुआ यह जयकीर्ति, लेके कनक गुरु नाम।
भावातिरेक में हुई गलतियों के लिए क्षमा पात्र।

आपका बालक

मुम्बई दि. 05.03.2018 दोपहर 3:58 मुनिप्रवर ध्यान-दिवाकर जयकीर्ति महाराज

(यह लेख बा.ब्र. पल्लवी जिनविद्या दीदी की प्रेरणा से लिखा)

आध्यात्मिक गुरु कनकनन्दी की वन्दना

बा. ब्र. पज्लवी

(चाल : कन्नड राग : प्रेम चन्द्रमा कैवो..., बांग्ला : वन्दे मातरम्...)

हे ! ज्ञानमूर्ति कनक गुरुवर, तव शरण में आयी हूँ...
तव परम सन्निधि पाके, तव अनुभव अमृत पीके...
तव सम बन जाऊँ...2 (ध्रुव)
समताधारी गुरुवर स्व-स्वरूप में रहते हो।
विभाव भाव से दूर हो, स्व-स्वभाव में रहते हो।
अशुभ से निवृत्त हो, शुभ में सदा/(नित) प्रवृत्त हो।
शुद्ध स्वरूप में स्थिर होने हेतु आयासरत हो।
साम्यमूर्ति, वैराग्यमूर्ति, ध्यानमूर्ति, त्यागमूर्ति, वात्सल्यमूर्ति गुरुवर।
आत्मज्ञानी गुरुवर क्षण-क्षण आत्मानुभव करते हो।
सर्वजीव में जिनेन्द्र दर्शन प्रति समय करते हो।
आत्महितैषी गुरुवर आत्म संबोधन करते हो।
विश्व के सर्व जीव आध्यात्ममय हो ऐसी भावना भाते हो।
विश्व हितैषी, सर्व कल्याणी, मंगलकारी, शुभभावधारी।
बाह्य प्रभावना से दूर हो, अन्तरंग में लीन हो...।
पंथ मत से परे हो, निज धर्म में तल्लीन हो।
आगम ज्ञानी गुरुवर, आगमानुसार चलते हो।
उदारभावी ऋषिवर, संकीर्णता से रहित हो।
अनुशासन प्रिय, अध्ययनशील, सहनशील, दयाशील।

आचार्य श्री कनकनन्दीजी गुरुवर की आरती

- आचार्य श्री यतीन्द्रसागरजी

(चाल : सायोनारा...)

संध्या की शुभ घड़ी आयी रे, चलो आरती करेंगे।
कनकनन्दी गुरुवर की, चलो आरती करेंगे।।(ध्रुव)
गुरुवर तीन रतन के धारी, मैं दुःखिया प्राणी संसारी।
भव दुःख से हमको छुड़ाओ रे, चलो आरती करेंगे।।(1)
अमृतमय उपदेश सुना दो, ज्ञान का दीपक मुझमें जलादो।
जगमग ज्योति जलाऊँ रे, चलो आरती करेंगे।।(2)

मान महाविष रूप बताया, मार्दव गुण धारण करवाया।
छुड़ा दिया अहंकार रे, चलो आरती करेंगे।।(3)

क्रोध महाविष रूप बताया, क्षमा भाव मन में धराया।
त्यागा हैं क्रोध महान् रे, चलो आरती करेंगे।।(4)

त्याग धर्म को है अपनाया, मोक्षमार्ग का पथ बतलाया।
मेरा भी करो उद्धार रे, चलो आरती करेंगे।।(5)

गुरु की वाणी सुख उपजावे, जन-जन का मिथ्यात्व मिटावे।
मिट जावे अज्ञान रे, चलो आरती करेंगे।।(6)

प. पू. वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दीजी गुरुदेव को सादर समर्पित

-ब्र.कपिल (कोबा)

संत चरण में नवाएँ, शीश भवि प्राणी,
मन, वदन हैं शुद्ध जिनका, अमीयभरी वाणी,
संत चरण में.....

हे वीतरागी, हे समभावी, ज्ञानसुधारस सिंधु स्वामी
सहजानंदी, हे जगनामी, प्रगट हरि गुरु हृदयाभिरामी
मुखमंडल अद्भुत ही चमके, अंतर आतम ज्योति दमके
आपके समीप वैर छोड़े जग प्राणी, संत चरण में....

आतमरामी ओ वनवासी, शोभे ज्यूँ चन्द्र पूरणमासी
अकिंचन हो जग से उदासी, दुर्धर घोर तपे निर आसी
निज वैभव में रमण करे जो, अचल अकम्पित ध्यान धरे जो
एक दो घड़ी में बने भगवन् समानी, संत चरण में...

ज्ञान सरिता उर से बही है, न कोई संशय न भ्रमणा रही हैं
चरण शरण में प्रीत लगी हैं, इनको पाने की आस जगी हैं
जी करता हैं यही बस जायें, दुर्लभ जीवन सफल बनाये;
अब इनकी छाँव में ये ज़िंदगी बितानी, संत चरण में...

चन्दनसम शीतलता मन की, धूप दहन सम विरहा अगन की...
दीपकसम ज्योति आतम की, श्रद्धा-भक्तिमय राह मिलन की;
विनती प्रभुजी के लघुनंदन को, पूंजू ऐसे हृदय कुंवर को;
भाव सुमन ले कर में, अँखियों में पानी, संत चरण में...
दि. 25.05.2018 को गुरुदेव श्री की प्रेरणा से सागवाड़ा में रचित।

भजन

रूपान्तरकर्त्ता : सुश्री पूर्वी पण्ड्या

(चाल : जब हम जवाँ होंगे...)

महावीर जहाँ होंगे, कनकनन्दी वहाँ होंगे
गुरुदेव जहाँ होंगे वहाँ कल्याण करेंगे...हर काम बनेंगे

जो कोई गुरुदेव शरण में आएगा
भाग्य उदय उसका उस क्षण हो जाएगा
उत्तम भाव से वो सदा आबाद रहेंगे...कल्याण करेंगे

विज्ञानी गुरुदेव सबके मन में बसते है
सनम्र उदार भाव से वो सजते है।
लौकिक सर्व विज्ञान से आगाज करेंगे...कल्याण करेंगे

आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव की आरती

- बा. ब्र. रोहित जैन

(चाल : चिंतामणी - पारसनाथ की...)

कनकनन्दी गुरुदेव की, करो आरती करो आरती।
कनकनन्दी - कनकनन्दी, श्रमण गुरुदेवा।।
आये हैं तव चरण में, दो ज्ञानामृत मेवा।।(ध्रुव)
कुन्थु गुरु के हिरा शिष्य हो, माँ सरस्वती के तुम पुत्र हो।

संकट मोचन गुरुवर - जय हो
आचार्य रत्न गुरुवर - जय हो
सिद्धान्त चक्री गुरुवर - जय हो

तव गुण हम गाये, भाग्य बदल जाए सबके

करो आरती, करो आरती, कनकनन्दी - कनकनन्दी श्रमण गुरुदेवा।।(1)
गोमटेश्वर में मुनिपद धारा, सहस्राब्दि महोत्सव बना सहारा।
शताधिक साधु के शिक्षा गुरु हो, आगम के तुम संरक्षक हो।।

ज्ञान-विज्ञान दिवाकर-जय हो
स्वाध्याय तपस्वी गुरुवर-जय हो
समता शिरोमणि गुरुवर - जय हो

कक्षा में हम जाए, शान्ति सब पाये तव ऑरा में
करो आरती करो आरती, कनकनन्दी-कनकनन्दी श्रमण गुरुदेवा।।(2)
चौदह भाषा के ज्ञानी गुरु है, सम्पूर्ण विश्व के आप गुरु है।
देश-विदेश के वैज्ञानिक पढ़ते, आत्मा-परमात्मा को जानते।।

आध्यात्मिक गुरुवर - जय हो
निर्विकल्प गुरुवर - जय हो
निराडम्बर गुरुवर - जय हो

आनंद सबको आए, आत्मा का परिचय जब होता है
करो आरती करो आरती, कनकनन्दी - कनकनन्दी श्रमण गुरुदेवा।।(3)
ख्याति-पूजा-प्रसिद्धि रहित, संकल्प-विकल्प-संक्लेश रहित।
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा रहित, शुद्ध-बुद्ध-आनंद लक्ष्य।।

निस्पृही गुरुवर - जय हो
आत्मज्ञानी गुरुवर - जय हो
विलक्षण ज्ञानी गुरुवर - जय हो

'रोहित' तव स्तुति करे, संसार भ्रमण छूट जाए मेरे
करो आरती करो आरती, कनकनन्दी - कनकनन्दी श्रमण गुरुदेवा।।(4)

विषयानुक्रमणिका

अ.सं.	विषय	पृ. क्र.
1.	आध्यात्मिक शक्ति गीताञ्जली की समीक्षा	2
2.	आध्यात्मिक गुरु कनकनन्दी की वन्दना	2
3.	आचार्य श्री कनकनन्दीजी गुरुवर की आरती	3
4.	प.पू वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव को सादर समर्पित	4
5.	आचार्य श्री कनकनन्दीजी गुरुदेव-भजन	5
6.	आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव की आरती	5

(पाप < पुण्य < मोक्ष <(शुद्ध) गीताञ्जली)

1.	विविध प्रकारके ज्ञान	9
2.	सच्चा धार्मिक V/S मिथ्या धार्मिक	25
3.	बाल गीत (प्रकृतिप्रेम कविता)	29
4.	निन्दक व विघ्नकर्त्ता सबसे महापापी क्यों!?	32
5.	पापसम पुण्य व मोक्षप्रद पुण्य	47
6.	गणधर से ले आचार्य स्व-शिष्यों के दोष बार-बार क्यों बताते है	51
7.	आत्मज्ञान होने पर पूर्व अवस्था सम्बधी विषाद	52
8.	देहात्म बुद्धि रूपी भ्रान्ति-कारण व निवारणोपाय	53
9.	आत्मदर्शी व अनात्मदर्शी के लक्षण व फल	54
10.	मेरा विश्व रूप	66
11.	स्व-उपलब्धि ही सर्व उपलब्धि	72
12.	समाधि से स्वात्मोपलब्धि	73
13.	स्वात्म भवन में आनन्द घन है	75

14.	कानून से परे नीति सत्य आध्यात्मिक	76
15.	मैं हूँ स्वयंपूर्ण, अतः निस्पृही-वीतरागी हूँ	78
16.	शरीर रहित होने पर लाभ	78
17.	स्वभाव बिन सुख कहाँ?	79
18.	उत्तम स्वात्म चिंता तो परचिंता अधमाधमा	80
19.	मैं ही मेरे परमद्रव्य-सत्य-धर्म-तीर्थ हूँ	80
20.	परम ज्ञान-सुख-उपदेश हेतु अनिवार्य योग्यता-पूर्ण स्वतंत्रता	109
21.	ज्ञान-वैराग्य हेतु पाप-पापीओं का चित्रण (वर्णन)	123
22.	कामासक्त पाप दुःखों को उत्साह से करता है	141
23.	त्यजनीय व ग्रहणीय	157
24.	जिनवाणी का ज्ञानामृत पान	158
25.	जैनधर्म की.....अलौकिकता	159

विविध प्रकार के ज्ञान

(सर्वज्ञ - छद्मस्थ-सुज्ञानी-कुज्ञानी, अल्पज्ञ-दुर्विदग्ध, जानकारी-अनुभूति....)

(चाल : जय हनुमान..क्या मिलिए...)

सर्वज्ञ व छद्मस्थ/(असर्वज्ञ) का स्वरूप जानो,
सुज्ञानी - कुज्ञानी का रूप पहचानो।

अल्पज्ञ - दुर्विदग्ध को सही-सही जानो,
जानकारी/(सूचना) व अनुभूति को विशेष जानो।।
सर्वज्ञ होते हैं सम्पूर्ण ज्ञानी, लोकालोक (तीन लोक) व तीनों काल के ज्ञानी।
अरिहंत व सिद्ध होते केवलज्ञानी, अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य के स्वामी।।(1)

वे जानते हैं मूर्तिक-अमूर्तिक द्रव्य, घातीकर्म रहित सकल परमात्मा।
अघातीकर्म भी रहित निकल परमात्मा, शुद्ध-बुद्ध-आनन्द-अमूर्त परमात्मा।
इनसे अतिरिक्त सभी होते छद्मस्थ, गणधर स्वामी तक होते है छद्मस्थ।
मतिश्रुतावधिमनःपर्ययः तक छद्मस्थ, घाती-अघाती आवृत छद्मस्थ।।(2)

गणधर तक सर्वज्ञ से शिक्षा लेते, गणधर तद्भव में मोक्ष जाते।
छद्मस्थों के ज्ञान होते संख्यात-असंख्यात,
गणधर स्वामी के ज्ञान होते असंख्यात।।
सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं सुज्ञानी, पाँचों सुज्ञानधारी होते हैं सुज्ञानी।
सर्वज्ञ-छद्मस्थ व अल्पज्ञ भी सुज्ञानी, तत्त्वार्थ श्रद्धान आत्मश्रद्धानी सुज्ञानी।।(3)

इनसे विपरीत जीव होते कुज्ञानी, मोहनीय कर्मोदय से होते कुज्ञानी।
संकीर्णता विपरीतता से सहित होते, एकान्तवादी हठाग्रही दुराग्रही होते।।
ऐसे जीव न होते सत्यग्राही-जिज्ञासु, तोतारटन्त-कूपमण्डुक सम इनकी बुद्धि।
वे दुर्विदग्ध, पंडितमन्यमाना, सर्वज्ञ से ले सुज्ञानी को मानते अज्ञानी।।(4)

जानकारी होती केवल सूचनामात्र, यथा सुनना मिश्री में होती है मिठास।
मिश्री खाने से होता अनुभव ज्ञान, जानकारी बिना भी अनुभूति से ज्ञान।
कुज्ञानी जानकारी को ही मानते ज्ञान, सुज्ञानी अनुभूति को मानते ज्ञान।

सभी ज्ञान को सम्पूर्ण जानते सर्वज्ञ, सर्वज्ञ बनना ही 'कनक' (का) परम लक्ष्य।।(5)

ओबरी 21.02.2018 रात्रि 08:28

सन्दर्भ-

सम्यग्ज्ञान का वर्णन, ज्ञान के भेद और नाम

मतिश्रुतावधिमनःपर्यय केवलानिज्ञानम्।।(9)

Right knowledge (is of five kinds)

मति Sensitive knowledge. Knowledge of the self and the non self by means of the senses and mind.

श्रुत Scriptural knowledge, Knowledge derived from the reading or preaching of scriptures, or through an object known by sensitive knowledge.

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच ज्ञान हैं।

गोम्मट्टसार जीवनकाण्ड के ज्ञानमार्गणाधिकार में ज्ञान का वर्णन करते हुए कहा भी है -

पंचेव होंति णाणा, मदिसुदओहीमणं च केवलयं।
खयउवसमिया चउरो, केवलणाणंहवेखइयं।। (गा. 300)

सम्यग्ज्ञान पाँच ही हैं। इनमें से आदि के चार ज्ञान जो क्षायोपशमिक हैं वे अपने-अपने प्रतिपक्षी मतिज्ञानावरणादि कर्मों के क्षयोपशम से होते हैं। सर्वघातिस्पर्धकों का उदयाभावी क्षय, सदवस्थारूप उपशम और देशघाति से होते हैं। सर्वघातिस्पर्धकों का उदयाभावी क्षय, सदवस्थारूप उपशम और देशघाति का उदय हो तो क्षयोपशम कहा जाता है। प्रतिपक्षी कर्म की इस अवस्था में होने वाले ज्ञान को क्षायोपशमिक कहते हैं। अन्तिम केवलज्ञान क्षायिक है। वह सम्पूर्ण ज्ञानावरण के क्षय से प्रकट हुआ करता है।

1. मतिज्ञान के आवरण के क्षयोपशम से और इन्द्रिय-मन के अवलम्बन से मूर्त-अमूर्त द्रव्य का विकल्परूप से (अपूर्ण रूप से) विशेषतः अवबोधन करता है वह आभिनिबोधिकज्ञान है।
2. श्रुतज्ञान के आवरण के क्षयोपशम से और मन के अवलम्बन से मूर्त-अमूर्त द्रव्य का विकलरूप से विशेषतः अवबोधन करता है वह श्रुतज्ञान है।

3. अवधिज्ञान के आवरण के क्षयोपशम से ही मूर्त द्रव्य का विकल्परूप से विशेषतः अवबोधन करता है वह अवधिज्ञान है।
4. मनःपर्ययज्ञान आवरण के क्षयोपशम से ही परमनोगत (दूसरों के मन के साथ सम्बन्ध वाले) मूर्तद्रव्य का विकल्परूप से विशेषतः अवबोधन करता है वह मनःपर्ययज्ञान है।
5. समस्त आवरण के अत्यन्त क्षय से, केवल ही (अकेला आत्मा ही) मूर्त-अमूर्त द्रव्य का सकलरूप से विशेषतः अवबोधन करता है वह स्वाभाविक केवलज्ञान है।

1. मतिज्ञान

मदिणाणं पुण तिविहं उवलब्धी भावणं च उवओगो।
तह एवं चदुवियप्पं दंसणपुव्वं हवदि णाणं।। (1) (पञ्चास्तिकाय पृ. 141)

मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर पाँच इन्द्रिय और मन के द्वारा जो कोई मूर्तिक और अमूर्तिक वस्तुओं को विकल्प सहित या भेद सहित जानता है वह मतिज्ञान है। सो तीन प्रकार हैं-मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जो पदार्थों को मानने की शक्ति प्राप्त होती है उसको उपलब्धि मतिज्ञान कहते हैं। यह नीला है, यह पीला है इत्यादि रूप से जो पदार्थ के जानने का व्यापार उसको उपयोग मतिज्ञान कहते हैं। जाने हुए पदार्थ को बारम्बार चिन्तवन करना सो भावना मतिज्ञान है। यही मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, आवाय, धारणा के भेद से चार प्रकार हैं। अथवा कोष्ठ बुद्धि, बीज बुद्धि, पदानुसारी बुद्धि और संभिन्न श्रोतृता बुद्धि के भेद से भी चार प्रकार हैं। यह मतिज्ञान सत्ता अवलोकनरूप दर्शनपूर्वक होता है।

2. श्रुतज्ञान

सुदणाणं पुणणाणी भणंति लद्धीय भावणा चेव।
उवओग णयवियप्पं णाणेण य वत्थु अत्थस्स।।(2)

वही आत्मा जिसने मतिज्ञान से पदार्थ को जाना था, जब श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने पर जो मूर्त और अमूर्त पदार्थों को जानता है उसको ज्ञानीजन श्रुतज्ञान कहते हैं। वह श्रुतज्ञान जो शक्ति की प्राप्ति रूप है सो लब्धि है, जो बार-बार विचार रूप है सो भावना है। उसी के उपयोग और नय ऐसे भी दो भेद है। 'उपयोग' शब्द से वस्तु को ग्रहण करने वाला प्रमाण जान लेना चाहिये तथा 'नय' शब्द से वस्तु के एक देश को ग्रहण करने वाला ज्ञाता का अभिप्राय मात्र लेना चाहिये, क्योंकि कहा

है - ''नयो ज्ञातुरभिप्रायः'' कि नय ज्ञाता का अभिप्राय मात्र हैं। जो गुण पर्याय रूप पदार्थ का सर्व रूप से जानना सो प्रमाण है और उसी के किसी एक गुण या किसी एक पर्याय मात्र को मुख्यता से जानना सो नय हैं। यहाँ यह तात्पर्य है कि ग्रहण करने योग्य परमात्मतत्त्व का साधक जो विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभाव रूप शुद्ध आत्मिक तत्त्व का सम्यक् श्रद्धान ज्ञान व आचरण रूप जो अभेद रत्नत्रयरूप भावश्रुत है सो निश्चयनय रूप से ग्रहण करने योग्य है और व्यवहारनय से इसी भावश्रुतज्ञान के साधक द्रव्यश्रुत को ग्रहण करना चाहिये।

3. अवधिज्ञान

ओहिं तहेव घेप्पदु देसं परमं च ओहिसव्वं च।
तिण्णिवि गुणेण णियमा भवेण देसं तहा णियदं।। (3)

जो अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर मूर्तिक वस्तु को प्रत्यक्ष रूप से जानता है वह अवधिज्ञान है। जैसे पहले श्रुतज्ञान को उपलब्धि भावना तथा उपभोग की अपेक्षा तीन भेद से कहा था वैसे यह अवधिज्ञान भावना को छोड़कर उपलब्धि तथा उपयोग स्वरूप है। अवधिज्ञान की शक्ति सो उपलब्धि है, चेतन की परिणति का उधर झुकना सो उपयोग है तथा उसके तीन भेद और भी जानो-देशावधि, परमावधि, सर्वावधि। किन्तु इन तीनों में से परमावधि और सर्वावधि ज्ञान उन चरमशरीरी मोक्षगामी मुनियों के होता हैं जो चैतन्य भाव के उछलने से पूर्ण व आनंदमय परम सुखामृत रस के आस्वादरूप परम समरसी भाव में परिणमन कर रहे हैं। जैसा कि वचन है ''परमोही सव्वोही चरमशरीरस्य विरदस्य'' ये तीनों ही अवधिज्ञान विशेष सम्यग्दर्शन आदि गुणों के कारण नियम से होते हैं तथा जो भव प्रत्यय अवधि है अर्थात् जो देव नारकियों के जन्म से होने वाली अवधि है वह नियम से देशावधि ही होती है यह अभिप्राय है।

4. मनःपर्ययज्ञान

विउलमदी पुणणाणं अज्जवणाणं च दुविह मणणाणं।
एदे संजमलद्धी उवओगे अप्पमत्तस्स।।(4)

यह आत्मा मनःपर्यय ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम होने पर दूसरे के मन में प्राप्त मूर्त वस्तु को जिसके द्वारा प्रत्यक्ष जानता है वह मनःपर्ययज्ञान है। उसके दो भेद हैं- ऋजुमति और विपुलमति। इनमें विपुलमति मनःपर्ययज्ञान दूसरे के मन में प्राप्त पदार्थ को सीधा (सरल) व वक्र दोनों को जानता है जबकि ऋजुमति मात्र सीधे (सरल

विषय) को ही जानता है। इनमें से विपुलमति उन चरमशरीरी मुनियों के ही होता है जो निर्विकार आत्मानुभूति की भावना को रखने वाले हैं तथा ये दोनों ही उपेक्षा संयम की दशा में संयमियों के ही होते हैं और केवल उन मुनियों के ही होते हैं जो वीतराग आत्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान व चारित्र की भावना सहित, पन्द्रह प्रमाद रहित अप्रमत्त गुणस्थान के विशुद्ध परिणाम में वर्त रहे हों। जब यह उत्पन्न होता है तब अप्रमत्त सातवें गुणस्थान में ही होता है, यह नियम है। फिर प्रमत्त के भी बना रहता है, यह तात्पर्य है।

5. केवलज्ञान

णाणं णेयणिमित्तं केवलणाणं ण होदि सुदणाणं।
णेयं केवलणाणं णाणाणाणं ण णत्थि केवलिणो।। (5)

केवलज्ञान घटपट आदि जानने योग्य पदार्थों के आश्रय से नहीं उत्पन्न होता है इसलिये वह जैसे ज्ञेय पदार्थों के निमित्त से नहीं होता है वैसे ही श्रुतज्ञानरूप भी नहीं है। यद्यपि दिव्यध्वनि के समय में इस केवलज्ञान के आधार से गणधर देव आदि को श्रुतज्ञान होता है तथापि वह श्रुतज्ञान गणधरदेवादि को ही होता है। केवल अरहंतों के नहीं है। केवली भगवान् के ज्ञान में किसी सम्बन्ध में ज्ञान व किसी में अज्ञान नहीं होता है, किन्तु सर्व ज्ञेयों का बिना क्रम के ज्ञान होता है अथवा मतिज्ञान आदि भेदों से नाना प्रकार का ज्ञान नहीं है किन्तु एकमात्र शुद्ध ज्ञान ही है। यहाँ जो मतिज्ञान आदि के भेद से पाँच ज्ञान कहे गये हैं वे सब व्यवहारनय से हैं। निश्चय से अखण्ड एक ज्ञान के प्रकाश रूप ही आत्मा है जैसे मेघादि रहित सूर्य होता है, यह तात्पर्य है।

प्रमाण का लक्षण और भेद

तत्प्रमाणे। (10)

They (i.e. five kinds of knowledge are) the two प्रमाण (and no others).

वह पाँचों प्रकार का ज्ञान दो प्रमाण रूप है।

''सम्यक् ज्ञानं प्रमाणम्।'' अर्थात् जो ज्ञान सम्यक् अर्थात् समीचीन (यथार्थ) है वही ज्ञान प्रमाण है। ज्ञान को समीचीन होने के लिए ज्ञान सम्बन्धी जो दोष है, उससे ज्ञान को रहित होना चाहिए। इसका प्रतिपादन प्रमेयरत्नमाला में निम्न प्रकार किया है-

प्रकर्षेण संशयादि व्यवच्छेदेनमीयते परिच्छिद्यते वस्तुतत्त्वं येन तत्प्रमाणं।

जिसके द्वारा प्रकर्ष से अर्थात् संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय के व्यवच्छेद

(निराकरण) से वस्तुतत्त्व जाना जाय वह प्रमाण कहलाता है।

तार्किक चूड़ामणि समन्तभद्र स्वामी ने भी सम्यग्ज्ञान का लक्षण अग्र प्रकार कहा है-

अन्यूनमनतिरिक्तं, याथातथ्यं बिना च विपरीतात्।

निःसन्देहं वेद, यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः।। (42, र.श्रा.पृ. 32)

जो ज्ञान वस्तु के स्वरूप को न्यूनता, अधिकता, विपरीतता और संदेह रहित जैसा को तैसा जानता है वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स।

गहणं सम्मण्णाणं सायारमणेयभेयं तु।। (42 द्र.सं.पृ. 142)

आत्मस्वरूप और पर पदार्थ के स्वरूप को जो संशय, विमोह (अनध्यवसाय) और विभ्रम (विपर्यय) कुज्ञान से रहित जानता है वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है। यह आकार (विकल्प) सहित है और अनेक भेदों का धारक है।

जाणइ तिकालविसए, दव्वगुणे पज्जए य बहुभेदे।

पच्चक्खं च परोक्खं, अणेण णाणं त्ति णं वेंति।। (299 गो.जी.पृ. 160)

जिसके द्वारा जीव त्रिकालविषयक भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल सम्बन्धी समस्त द्रव्य और उनके गुण तथा उनकी अनेक प्रकार की पर्यायों को जाने उसको ज्ञान कहते हैं। इसके दो भेद हैं, एक प्रत्यक्ष दूसरा परोक्ष।

मति श्रुत और अवधिज्ञान में मिथ्यात्पन
मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च (31)

And sensitive scriptural visual (knowledge are also) wrong (knowledge).

मति, श्रुत और अवधि ये तीनों विपर्यय भी है। ज्ञान का कार्य जानना है। परन्तु जब ज्ञानावरणीय कर्म का उदय होता है तब ज्ञान की शक्ति कुंठित हो जाती है, परन्तु विपरीत नहीं होती है। किन्तु मोहनीय कर्म के उदय से ज्ञान विपरीत रूप में परिणमन कर लेता है। अमृतचन्द्र सूरि ने कहा भी है-

मतिः श्रुतावधी चैव मिथ्यात्वसमवायिनः।

मिथ्याज्ञानानि कथ्यन्ते न तु तेषां प्रमाणता।। (35)

मति, श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान यदि मिथ्यात्व के साथ सम्बन्ध रखने वाले हैं तो मिथ्याज्ञान कहे जाते हैं और उस दिशा में उनमें प्रमाणता नहीं मानी जाती।

मिच्छत्ता अण्णाणं अविरदिभावो य भावआवरणा।

णेयं पडुच्च काले तह दुण्णय दुप्पमाणं च।। (6) (पंचास्तिकाय)

द्रव्य मिथ्यात्व के उदय से ज्ञान, अज्ञान रूप अर्थात् कुमति, कुश्रुत व विभंगज्ञान रूपी होता है तथा व्रत रहित भाव भी होता है। इस तरह तत्त्वार्थ श्रद्धानुरूप भाव सम्यग्दर्शन व भाव संयम का आवरण रूप भाव होता है जैसे ही मिथ्यात्व के उदय से ज्ञेयरूप जीवादि पदार्थों को आश्रय करके तत्त्व विचार के समय में सुनय दुर्नय हो जाता है व प्रमाण दुःप्रमाण हो जाता है।

अण्णाणतियं होदि हु, सण्णाणतियं खु मिच्छाअणउदये।

णवरि विभंगं णाणं पंचिदियसण्णिपुण्णेव।। (301)

आदि के तीन (मति, श्रुत अवधि) ज्ञान समीचीन भी होते हैं और मिथ्या भी होते हैं। ज्ञान के मिथ्या होने का अंतरंग कारण मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी कषाय का उदय है। मिथ्या अवधि को विभंग भी कहते हैं। इसमें यह विशेषता है कि यह विभंगज्ञान संज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय के ही होता है।

विसंजतकूडपंजरबंधादिसु णिणुवएसकरणेण।

जा खलु पवट्टइ मई, मइअण्णाणेति णं बेंति।। (303)

दूसरे के उपदेश के बिना ही विषय यंत्र कूट पंजर तथा बंध आदि के विषय में जो बुद्धि प्रवृत्त होती है उसको मत्यज्ञान कहते हैं।

जिसके खाने से जीव मर सके उस द्रव्य को विष कहते हैं। भीतर पैर रखते ही जिसके किवाड़ बंद हो जाये और जिसके भीतर बकरी आदि को बाँधकर सिंह आदि को पकड़ा जाता है उसको यंत्र कहते हैं। जिससे चूहे वगैरह पकड़े जाते हैं, उसको कूट कहते हैं। रस्सी में गाँठ लगाकर जो जाल बनाया जाता है उसको पंजर कहते हैं। हाथी आदि को पकड़ने के लिए जो गड्ढे आदिक बनाये जाते हैं उनको बंध कहते हैं। इत्यादि पदार्थों में दूसरे के उपदेश के बिना जो बुद्धि प्रवृत्त होती है उसको मत्यज्ञान कहते हैं, क्योंकि उपदेश पूर्वक होने से वह ज्ञान श्रुतज्ञान कहा जायेगा।

आभीयमासुरक्खं, ...।

तुच्छा असाहणीया, सुय अण्णाणेति णं बेंति।। (304)

अर्थ-चौरशास्त्र तथा हिंसाशास्त्र.....परमार्थशून्य अतएव अनादरणीय उपदेशों को मिथ्याश्रुतज्ञान कहते हैं।

'आदि' शब्द से सभी हिंसादि पाप कर्मों के विधायक तप असमीचीन तत्त्व के

प्रतिपादक ग्रंथों को कुश्रुत और उनके ज्ञान को श्रुतज्ञान समझना चाहिये।

विवरीय मोहिणाणं,खओवसमियं च कम्मबीजं च।
विभंगो त्ति पउच्चूउ, समत्तणाणीण समयम्हि। (305)

सर्वज्ञों के उपदिष्ट आगम में विपरीत अवधिज्ञान को 'विभंग' कहते हैं। इसके दो भेद हैं-एक क्षायोपशमिक, दूसरा भवप्रत्यय।

देव नारकियों के विपरीत अवधिज्ञान को भवप्रत्यय विभंग कहते हैं और मनुष्य तथा तिर्यंचों के विपरीत अवधिज्ञान को क्षायोपशमिक विभंग कहते हैं। इस विभंग का अंतरंग कारण मिथ्यात्व आदिक कर्म है। 'विभंग' शब्द का निरूक्तिसिद्धि अर्थ यह है कि मिथ्यात्व या अनंतानुबंधी कषाय के उदय से अवधिज्ञान की विशिष्टता समीचीनता का भंग होकर उसमें अयथार्थता आ जाती है, इसलिए उसको 'विभंग' कहते हैं इसको कर्म बीज इसलिए कहा है कि मिथ्यात्वादि कर्मों के बंध का वह कारण है। परन्तु साथ ही 'च' शब्द का उच्चारण करके यह भी सूचित कर दिया गया है कि कदाचित् नरकादि गतियों में पूर्वभव का ज्ञान कराकर वह सम्यक्त्व उत्पत्ति में भी निमित्त हो जाता है।

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरून्मत्तवत्।। (32)

From tack of discrimination of the real, and the unreal (the soul with wrong knowledge) like a lunatic, knows things according to his own whims.

वास्तविक और अवास्तविक के अंतर के बिना 'यदृच्छोपलब्धि' (जब जैसा रूप आया उस रूप ग्रहण होने) के कारण उन्मत्त की तरह ज्ञान भी अज्ञान ही हैं।

ज्ञेय के अनुरूप जो ज्ञान होता है उसे 'सम्यग्ज्ञान' कहते हैं। ज्ञेय के अनुरूप जो ज्ञान नहीं होता उसे 'मिथ्याज्ञान' कहते हैं। जब जीवों का श्रद्धान विपरीत होता है तब ज्ञान भी विपरीत हो जाता है। प्रकृत में 'सत्' का अर्थ विद्यमान और 'असत्' का अर्थ अविद्यमान है। इनकी विशेषता न करके इच्छानुसार ग्रहण करने से विपर्यय होता है। कदाचित् रूपादिक विद्यमान है तो भी उन्हें अविद्यमान मानता है और कदाचित् अविद्यमान वस्तु को भी विद्यमान कहता है। कदाचित् सत् को सत् और असत् को असत् ही मानता है। यह सब निश्चय मिथ्यादर्शन के उदय से होता है। जैसे पित्त के उदय से आकुलित बुद्धि वाला मनुष्य माता को भार्या और भार्या को माता मानता है। जब अपनी इच्छा की लहर के अनुसार माता को माता और भार्या को भार्या ही मानता है तब भी वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं है। इसी प्रकार मत्यादिक का भी

रूपादिक में विपर्यय जानना चाहिए। खुलासा इस प्रकार है-इस आत्मा में स्थित कोई मिथ्यादर्शन रूप परिणाम रूपादिक की उपलब्धि होने पर भी कारण विपर्यास, भेदाभेदविपर्यास और स्वरूपविपर्यास को उत्पन्न करता रहता है।

कारण विपर्यास-यथा कोई मानते हैं कि रूपादिक का एक कारण है जो अमूर्त और नित्य है। कोई मानते हैं कि पृथ्वी जाति के परमाणु अलग है और चार गुण वाले हैं। जल जाति के परमाणु अलग है जो तीन गुण वाले हैं। अग्नि जाति के परमाणु अलग है जो दो गुण वाले हैं और वायु जाति के परमाणु अलग हैं जो एक गुण वाले हैं तथा ये परमाणु अपने समान जातीय कार्य ही उत्पन्न करते हैं। कोई कहते हैं कि पृथ्वी आदि चार भूत हैं और इन भूतों के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श ये भौतिक धर्म है। इन सबके समुदाय को एक रूप परमाणु या अष्टक कहते हैं। कोई कहते है कि पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु से क्रम से कठिन्यादि, द्रवत्वादि, उष्णत्वादि और ईरर्णवादि गुण वाले अलग-अलग जाति के परमाणु होकर कार्य को उत्पन्न करते हैं।

भेदाभेदविपर्यास-यथा कारण से कार्य को सर्वथा भिन्न या सर्वथा अभिन्न मानना।

स्वरूपविपर्यास-यथा-रूपादिक निर्विकल्प है, या रूपादिक है ही नहीं, या रूपादिक के आकाररूप से परिणत हुआ विज्ञान ही है उसका आलम्बनभूत और कोई बाह्य पदार्थ नहीं है। इसी प्रकार मिथ्यादर्शन के उदय से जीव प्रत्यक्ष और अनुमान के विरुद्ध नाना प्रकार की कल्पनाएँ करते हैं और उनमें श्रद्धान उत्पन्न करते हैं। इसलिए इनका यह ज्ञान मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान या विभंग ज्ञान होता है। किन्तु सम्यग्दर्शन तत्त्वार्थ के ज्ञान में श्रद्धान उत्पन्न करता है अतः इस प्रकार का ज्ञान मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होता है।

मतिज्ञान के भेद

अवग्रहेहावायधारणाः।। (15)

अवग्रह, ईहा, आवाय और धारणा ये मतिज्ञान के चार भेद है।

इस सूत्र में ज्ञान प्राप्ति के मनोवैज्ञानिक प्रणाली का वर्णन किया गया है। किसी भी विषय के धारणा रूपी ज्ञान के लिये किन-किन मनोवैज्ञानिक प्रणालियों से गुजरना पड़ता है उसका वर्णन किया गया है। विद्यार्थियों को इस सूत्र में प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक प्रणाली से अध्ययन करना चाहिये जिससे उनकी धारणा शक्ति (स्मरण शक्ति) अधिक हो सकती है।

विषय और विषयी के सम्बन्ध के बाद होने वाले प्रथम ग्रहण को अवग्रह कहते हैं। विषय और विषयी का सन्निपात (सम्बन्ध) होने पर दर्शन होता है। उसके पश्चात् जो पदार्थ का ग्रहण होता है वह 'अवग्रह' कहलाता है। जैसे चक्षु इन्द्रिय के द्वारा 'यह शुक्ल रूप है' ऐसा ग्रहण करना अवग्रह है। अवग्रह के द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थों में उसके विषय में जानने की इच्छा ईहा कहलाती है। जैसे, 'जो शुक्ल रूप देखा है वह क्या बकपंक्ति हैं?' इस प्रकार जानने की इच्छा 'ईहा' है। विशेष के निर्णय द्वारा जो यथार्थ ज्ञान होता है उसे 'अवाय' कहते है। जैसे-उत्पतन, निपतन और पंखविक्षेप आदि के द्वारा यह बकपंक्ति ही है ध्वजा नहीं है, ऐसा निश्चय होना अवाय है। जानी हुई वस्तु का जिस कारण कालान्तर में विस्मरण नहीं होता उसे 'धारणा' कहते है। जैसे-यह वही बकपंक्ति है जिसे प्रातःकाल मैंने देखा था, ऐसा मानना धारणा है। सूत्र में इन अवग्रहादिक का उपन्यास क्रम इनके उत्पत्ति क्रम की अपेक्षा किया है। तात्पर्य यह है कि, जिस क्रम से ये ज्ञान उत्पन्न होते हैं उसी क्रम से इनका सूत्र में निर्देश किया है।

गोम्मट्टसार जीवनकाण्ड में भी कहा गया है -

अहिमुहणियमियबोहणमाभिणिबोहयमणिदिंइंदियजं।
अवगहईहावायाधारणगा होंतिपत्तेयं।। (306)

इन्द्रिय और अनिन्द्रिय (मन) की सहायता से अभिमुख और नियमित पदार्थ को 'अभिमुख' कहते हैं। जैसे-चक्षु का रूप नियत है इस ही तरह जिस-जिस इन्द्रिय को जो-जो विषय निश्चित है उसको नियमित कहते हैं। इस तरह के पदार्थों का मन अथवा स्पर्शन आदिक पाँच इन्द्रियों की सहायता से जो ज्ञान होता है उसको 'आभिनिबोधक मतिज्ञान' कहते हैं। इस प्रकार मन और इन्द्रिय रूप सहकारी निमित्तभेद की अपेक्षा से मतिज्ञान के छह भेद हो जाते हैं। इसमें भी प्रत्येक के अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा ये चार-चार भेद हैं। प्रत्येक के चार-चार भेद होते हैं, इसलिए छह को चार से गुणा करने पर मतिज्ञान के चौबीस भेद हो जाते है।

विसयाणं विसइणं, संजोगाणंतरं हवे णियमा।
अवगहणाणं गहिदे, विसेसकंखा हवे ईहा।। (308)

पदार्थ और इन्द्रियों का योग्य क्षेत्र में अवस्थान रूप सम्बन्ध होने पर सामान्य अवलोकन या निर्विकल्प ग्रहण रूप दर्शन होता है और इसके अनन्तर विशेष आकार आदि को ग्रहण करने वाला अवग्रह ज्ञान होता है। इसके अनन्तर जिस पदार्थ को

अवग्रह ने ग्रहण किया है उस ही के किसी विशेष अंश को ग्रहण करने वाला ईहा ज्ञान होता है।

ईहणकरणेण जदा, सुणिण्णओ होदि सो अवाओ दु।
कालंतरे वि णिण्णिदवत्थुसुमरणस्स कारणं तुरियं।। (309)

ईहा ज्ञान के अनन्तर वस्तु के विशेष चिह्नों को देखकर जो उसका विशेष निर्णय होता है उसको 'अवाय' कहते हैं। जैसे-भाषा, वेष विन्यास आदि को देखकर ''यह दाक्षिणात्य ही है'' इस तरह के निश्चय को अवाय कहते हैं। जिसके द्वारा निर्णित वस्तु का कालान्तर में भी विस्मरण न हो उसको धारणा ज्ञान कहते हैं।

मांइडफुलनेस

वर्तमान में डुबकी लगाने का आनन्द लीजिए

माइन्डकुलनेस का मतलब है अपने विचार, भावनाओं, शरीर की संवेदनाओं और आसपास के माहौल के प्रति क्षण-क्षण की जागरूकता होना। इससे कठिन स्थितियों से निपटने और बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय लेने की हमारी क्षमता बढ़ जाती है।

माइन्डफुल ब्रिदिंग :

इसे खड़े रहकर या बैठकर किसी समय भी किया जा सकता है। धीरे-धीरे नाक में साँस ले और मुँह से छोड़े। एक पूरी साइकिल में मोटे तौर पर 6 सेंकड लगेंगे। अपने विचारों, अपने अधूरे कार्यों को सांस के साथ जाने दें। साँस की लय के साथ विचारों को उठता-गिरता देखें। यदि एक मिनट की इस एक्सरसाइज में आनंद आए तो क्यों न इसे पाँच मिनट तक बढ़ा लिया जाए?

माइंडफुल लिसनिंग :

हम जो भी महसूस करते हैं वह भूतकाल के अनुभव से प्रभावित होता है। आँखें बंद करके हेडफोन लगा लें और कोई ऐसा संगीत सुने जो पहले न सुना हो। गायक, वाद्य या अन्य किसी बात से आंकलन न करें। संगीत के हर पहलू पर गौर करें। ध्वनि, उतार-चढ़ाव, वाद्यों के प्रकार, हर ध्वनि को सुनें। उद्देश्य यह है कि कोई फैसला दिए बगैर संगीत में पूरी तरह डूब जाएं। यानी सोचें नहीं, सिर्फ सुनें।

माइंडफुल अप्रिसिएशन :

आपको अपने दिल की पाँच ऐसी चीजें पहचानती हैं, जो आमतौर पर बिना सराहना के रह जाती हैं। ये वस्तुएँ हो सकती हैं, लोग हो सकते हैं। दिन के अंत में नोटपैड लेकर पाँचों पर गहराई से गौर करें। जैसे घर को रोशन करने वाली बिजली,

कपड़े, खूबशू। एक बार पाँच चीजों की पहचान हो जाए तो उनके बारे में सबकुछ पता करें ताकि उन्हें सच्चे अर्थों में अप्रिसिएट यानी सराह सकें।

इंट्यूशन क्विज

अपनी छठी इंदिय का स्कोर जानिए

क्या आप केवल तर्क से चलने वाले व्यक्ति हैं या कभी-कभी भीतर की आवाज सुनकर या अचानक महसूस होने वाली भावनाओं से भी चलते हैं? ये वाक्य पढ़कर कभी नहीं (1 अंक), कभी-कभी (2 अंक) और आमतौर पर (3 अंक) में से एक उत्तर चुनें और जानें अपनी छठी इंद्रिय का स्कोर।

- अपने जीवन का उद्देश्य या लाइफ मिशन अच्छी तरह पता है?
- भीतर की आवाज की अनदेखी करने के बाद पछताने की स्थिति पैदा होती है?
- तत्काल जान जाते हैं कि कोई व्यक्ति सच बोल रहा है या झूठ।
- क्या कोई ऐसा संकेत मिला, जिससे बाद में आप खतरे से बच गए?
- रास्ता भटकने पर आप अपने इंट्यूशन से सही दिशा खोज लेते हैं।
- किसी व्यक्ति या जगह से बहुत गहरा संबंध लगता है, जबकि पहले आप कभी मिले नहीं या वहाँ गए नहीं होते हैं।
- जब बड़ा फैसला लेना हो तो मेडिटेशन करते हैं। आपको दिशा मिल जाती हैं।
- आपको न जाने कहाँ से रचनात्मक विचार आ जाते हैं, जो बहुत सफल रहते हैं।
- कुछ अच्छा-बुरा होने का पता न होने पर भी उनके पहले आप बहुत चिंता और उत्तेजना की स्थिति रहते हैं।

7-9

वार्निंग सिस्टम इंट्यूशन :

यह आमतौर पर जिन्दगी को खतरा होने की चेतावनी देता है।

10-18

सोशल इंट्यूशन :

संवेदनशील व्यक्ति हैं और दूसरों की भावनाएँ तत्काल समझ जाते हैं।

19-27

क्रिएटिव इंट्यूशन :

अपनी भावनाओं और आसपास के वातावरण से अच्छा तालमेल है।

हेयोपादेय से रहित जीव मिथ्यादृष्टि है

ण वि जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेयं च पुण्ण पावं हि।
तच्चमतच्चं धम्ममधम्मं सो सम्माउम्मुक्को।।40।। (रयण.)

अर्थ : जो मनुष्य कार्य अकार्य को, हित अहित को अर्थात् सेवन करने योग्य व असेवन करने योग्य है, पुण्य क्या है और पाप क्या है, धर्म क्या है-अधर्म क्या है, तत्त्व क्या है, अतत्त्व क्या है, इसका विवेक नहीं है वह मनुष्य सम्क्यत्व से रहित है अर्थात् मिथ्यादृष्टि है।

हेयोपादेय रहित जीव के सम्यक्त्व कहाँ?

ण वि जाणइ जोग्गमजोग्गं णिच्चमणिच्चं हेयमुवादेयं।
सच्चमसच्चं भव्वमभव्वं सो सम्मउम्मुक्को।। 41।।

अर्थ : जो मानव अमूत्य ऐसे इस मानव देह को प्राप्त करके भी विवेक पूर्वक अब मेरे लिए क्या हेय-त्यागने योग्य है और उपादेय-ग्रहण करने योग्य क्या है, इस प्रकार हेय उपादेय के विवेक रहित प्रमादी मनुष्य निरंतर पापों की प्रवृत्ति करता है। सत्यार्थ क्या है, असत्यार्थ क्या है, नित्य का अर्थ क्या है अनित्य का अर्थ क्या है भव्य कौन है अभव्य कौन है भव्य अभव्य क्यों कहते हैं, सम्यक्त्व मिथ्यात्व क्यों कहते हैं इनका लक्षण क्या है आदि का जिनको विवेक विचार ज्ञान नहीं है वह मनुष्य सम्यत्व से रहित है अर्थात् धर्म से तत्त्वज्ञान से रहित मिथ्यादृष्टि है।

लौकिक जनों की संगाति योग्य नहीं

लोइय जणसंगादो होइ मइमुहर कुडिल दुब्भावो।
लोइय संगं तम्हा जोइ वि तिविहेण मुंचा हो।। 42।।

अर्थ : लौकिक मनुष्यों की प्रवृत्ति अर्थात् मनुष्य अधिक बोलने वाले (वाचाल) बक्कड़ कुटिल परिणामी और दृष्टि भावों से अत्यंत क्रूर विकृत परिणामी होते हैं इसलिये लौकिक मनुष्यों की संगति कभी नहीं करे। मन वचन काय से छोड़ देना चाहिये।

सम्यक्त्वरहित जीव का लक्षण

उग्गो तिव्वो दुट्ठो दुब्भावो दुस्सुदो दुरालावो।
दुम्मदरदो विरूद्धो सो जीवो सम्मउम्मुक्को।।43।।

अर्थः उग्र प्रकृति वाले, तीव्र क्रोधादि प्रकृति वाले, दुष्ट स्वभाव वाले, दुर्भाव वाले, मिथ्या शास्त्रों के श्रवण करने वाले, दुष्ट वचन के कहने वाले, मिथ्याभिमान को धारण करने वाले, आत्मधर्म से विपरीत चलने वाले और अतिशय क्रूर प्रकृति वाले मनुष्य सम्यक्त्व रहित होते हैं।

क्षुद्र स्वभावी व दुर्भावना युक्त जीव सम्यक्त्व हीन हैं

खुद्दो रुद्दो रुट्ठो अणिट्ठपिसुणा सग्गत्थि असूयो।
गायण जायण भंडण दुस्सुणसीलो दु सम्मउम्मुक्को।। 44।।

अर्थः क्षुद्र प्रकृति वाले रौद्र परिणामी, क्रोधी चुगलखोर कामी, गर्विष्ठ, असहनशील वाले, द्वेषी, गायन करने वाले, याचना करने वाले, लड़ाई झगड़ा करने वाले, दूसरों के दोषों को प्रकट करने वाले, निंद्य पापाचारी और मोही मनुष्य धर्म तथा सम्यक्त्व से रहित होते हैं।

जिन-धर्म विनाशक जीवों के स्वभाव

वाणर गद्दह साण गय वग्घ वराह कराह।
पक्खि जलूय सहावणर जिणवरधम्म विणासु।। 45।।

अर्थः बंदर स्वभाव वाले, गधे के स्वभाव वाले, कुत्ते के स्वभाव वाले, हाथी के स्वभाव वाले, बाघ के स्वभाव वाले, शूकर के स्वभाव वाले, पक्षी के स्वभाव वाले, जलूकादि स्वभाव वाले मनुष्य श्री जिनेन्द्र देव प्रणीत धर्म को धारण नहीं कर सकते हैं। धर्म का लोप करने वाले होते हैं।

देश में हालात ऐसे हो गए हैं कि पीएचडी डिग्रीधारी साधारण लिपिक और चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी तक के पदों के लिए आवेदन कर रहे हैं। क्या देश में दिन ब दिन बिगड़ते जा रहे रोजगार के हालात के कारण ऐसा हो रहा है? या फिर, इसके लिए उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निरंतर गिरते स्तर को जिम्मेदार ठहराना चाहिए?

अनुपयोगी होती जा रहीं पीएचडी डिग्रियां

पी.पुष्कर

भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा बांटी जा रही पीएचडी डिग्रियों का स्तर इतना नीचा है कि किसी भी कॉलेज या विश्वविद्यालय में प्रारंभिक स्तर पर शिक्षकों के रिक्त पद भरने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग मानकों के अनुसार नेट या स्लेट पास करना अनिवार्य है भले ही पीएचडी कर लिया हो।

पिछले दिनों तमिलनाडु लोक सेवा आयोग की 9500 पदों की मंत्रालयिक संवर्ग की भर्ती परीक्षा आयोजित की। करीब 20 लाख आवेदकों में से 992 पीएचडी डिग्रीधारी थे व 23 हजार एम.फिल डिग्री लिये हुए थे। ऐसा पहली बार नहीं हुआ है, जब बड़ी संख्या में पीएचडी क्लर्क जैसे छोटे पद के लिए परीक्षा में बैठे हों। दो साल पहले ही सितम्बर 2015 में जब उत्तर प्रदेश सरकार ने सचिवालय में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के लिए आवेदन आमंत्रित किए थे तो 368 पदों के लिए 23.25 लाख आवेदन आए और उनमें से 255 अभ्यार्थी पीएचडी डिग्रीधारी थे। इस पद के लिए अनिवार्य न्यूनतम योग्यता थी पांचवी कक्षा पास होना व साइकिल चलाना आता हो। आखिर स्नानकोत्तर के बाद उत्कृष्ट शोध कर पीएचडी जैसी डिग्री हासिल करने वाले लिपिक या उससे छोटे पदों के लिए आवेदन क्यों करते है? संभवतः इसकी तीन वजह हो सकती है। पहली, बहुत ही साधारण सी बात है कि भारतीय विश्वविद्यालय कई अयोग्य लोगों को पीएचडी डिग्री बांट देते है। फिर, ये ही लोग नाम भर के लिए पीएचडी लिये किसी कॉलेज, यूनिवर्सिटी और शोध संस्थानों में अध्यापन या शोध संबंधी सम्मानीय नौकरी के लिए आवेदन करने के बजाय हर तरह के छोटे-मोटे पद के लिए आवेदन कर देते हैं। कुछ लोग यह मान सकते हैं कि केवल उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे पिछड़े राज्यों के विश्वविद्यालयों द्वारा दी जाने वालीह पीएचडी डिग्रीधरियों का यह हाल है परन्तु जब तमिलनाडु जैसे राज्यों मे भी यही स्थिति सामने आती है तो लगता है कि वहां भी यही हालात हैं। दूसरी वजह हो सकती है कि हमारे कॉलेज विश्वविद्यालयों में नौकरियों का अभाव है। यह काफी हद तक सच है। अखबारों में सामान्यतः दिखाया जाता है कि हमारे श्रेष्ठ शिक्षण संस्थानों में 30-40 प्रतिशत सीटों पर अध्यापकों के पद रिक्त होते है। सरकारी विश्वविद्यालयों व निजी कॉलेजों में इससे अधिक संख्या में अध्यापकों के पद रिक्त होते है। परन्तु सच्चाई यह है कि

आवेदन कम पदों के लिए आमांत्रित किए जाते है और भर्तियां कर ली जाती हैं। वित्तीय संकट से जूझ रहे सरकारी विश्वविद्यालय जहां जरूरत से कम पदों पर नए शिक्षकों की भर्ती कर रहे हैं, वहीं प्राइवेट संस्थान पूर्णकालिक शिक्षकों के बजाय अंशकालिक अध्यापकों को ही नौकरी दे रहे है क्योंकि उन्हें अपेक्षाकृत कम वेतन देना होता है। तीसरा कारण यह हो सकता है कि पीएचडी डिग्रीधारी युवा ऐसे पदों के लिए इसलिए आवेदन करते है क्योंकि उनकी योग्यता के लायक नौकरियां उपलब्ध ही नहीं हैं। साथ ही कुछ मामलों में जरूरत से अधिक योग्य पीएचडी डिग्रीधारी उपलब्ध है, वे उनके लिए ही आवेदन कर बैठते है। ये तीनों कारण यह समझने के लिए काफी हैं कि पीएचडीधारी सैंकड़ों आवेदक लिपिक या उससे कम दर्जे के पदों के लिए क्यों आवेदन कर देते हैं। लेकिन, चिंता का विषय तो यह है कि निम्न स्तर की पीएचडी डिग्रीयां भारतीय शिक्षा व्यवस्था के लिए कलंक साबित हो रही हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा बांटी जा रही पीएचडी डिग्रियों का स्तर इतना नीचा है कि किसी भी कॉलेज या विश्वविद्यालय में प्रारंभिक स्तर पर शिक्षकों के रिक्त पद भरने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग मानकों के अनुसार नेशनल एलिजिबिलिटी टेस्ट (नेट) या स्टेट लेवल एलिजिबिलिटी टेस्ट (स्लेट) पास करना अनिवार्य है भले ही पीएचडी कर लिया हो। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पीएचडी को भावी शिक्षकों की अनिवार्य योग्यता का सम्पूर्ण मापदण्ड नहीं माना जा सकता। इसका कारण है कि अच्छी रेटिंग वाले विश्वविद्यालय में पीएचडी करने वालों को उतना सा कष्ट भी नहीं होता जितना दुनिया के किसी भी अन्य विश्वविद्यालय से स्नातक करने वाले विद्यार्थियों को होता है। दरअसल भारत का उच्च शिक्षा तंत्र हर स्तर पर चरमराया हुआ है, स्नातक से अधिस्नातक व व्यावसायिक पाठ्यक्रमों तक, सभी पाठ्यक्रमों में एक जैसे ही हालात हैं। विडम्बना यह है कि जिसके पास जो डिग्री है, वह उस डिग्री से सम्बन्धित नौकरी के ही लायक नहीं है। देश में ऐसे हजारों स्नातक है जो बेरोजगार ही रह जाते हैं। अनुपयोगी पीएचडी डिग्रियाँ तो भारतीय उच्च शिक्षा तंत्र पर ही सवालिया निशान लगाती हैं। यह सही है कि पहले कुछ सुधार किए गए थे लेकिन वे पीएचडी को मुश्किल बनाने के लिए कुछ खास नहीं थे। उदाहरण के लिए कोर्सवर्क यानी पाठ्यक्रम संबंधित कार्य लेकिन जितने भी विश्वविद्यालयों ने अपने पीएचडी विद्यार्थियों के लिए कोर्सवर्क लागू किया वह दिखावा बन कर रह गया। ना तो पाठ्यक्रमों की सामग्री चुनौतीपूर्ण है और ना ही उनका मूल्यांकन बल्कि विश्वविद्यालय

अनुदान आयोग के नियमानुसार कोर्सवर्क विद्यार्थियों को नेट या स्लैट पास करने की अनिवार्यता से बचाने में सहायक है। जब सरकार पीएचडी करवाने वाले बहुत कम संस्थानों में ही समुचित नियमन प्रक्रिया लागू नहीं कर पा रही है तो केसे उम्मीद करें कि वह राज्य या राष्ट्रीय स्तर पर आवश्यक उच्च शिक्षा सुधार लागू कर सकती है।

सच्चा धार्मिक V/S मिथ्या धार्मिक

(सम्यक्त्व सहित व रहित व जैन धर्म नाशक जीवों के स्वभाव)

(चाल : 1. कसमें वादे...2. क्या मिलिए.....)

सम्यग्दृष्टि होते (हैं) महान्....श्रद्धा-प्रज्ञा सहित....
अनंताबन्धी क्रोधादि रिक्त...मोह व मद रहित...
अतः वे होते ज्ञान वैराग्य युक्त..देव-शास्त्र व गुरु भक्त...
संसार-शरीर-भोग (से) भिन्न...निश्चय से मानते सिद्ध सम...1

अष्ट गुण अष्ट-अंग युक्त...संवेग वैराग्य उपशम युक्त...
शालीन-शान्त धैर्य युक्त...दान-दया-पूजा संयुक्त...
उक्त गुण गण से जो रहित...उग्रता तीव्र कषाय युक्त...
दुष्टता व दुर्भावना युक्त...दुश्रुत दुर्भाषण युक्त....2

मिथ्यामतों में वे अनुरक्त...विरोध व द्वन्द्व सहितऽऽ
संकीर्ण भाव व काम युक्त... रौद्र परिणाम रुष्टता युक्त ऽऽ
अनिष्ठ भाव व्यवहार युक्त...चुगलखोर-निन्दा युक्त ऽऽ
अभिमान व ईर्ष्या युक्त...याचना व झगड़ा युक्त ऽऽ ...3

नानाविध दूषण सहित...दुराग्रह हठाग्रह युक्त ऽऽ
संकीर्ण पंथ-मत सहित...ढोंग-पाखण्ड रुढ़ी युक्त ऽऽ
बन्दर सम चंचलता युक्त...समता सहिष्णुता रिक्त ऽऽ
गधा सम मन्दमति युक्त...परचिन्ता-निन्दा वाहक ऽऽ ...4

कुत्ता सम वाचालता युक्त...धर्म धर्मी से कलह युक्त ऽऽ
व्याघ्र सम क्रूरता युक्त...शुकर सम भक्षाभक्ष सहित ऽऽ
ऊँट सम कांटा तिक्त भक्षक...दंभ से शिर ऊँचा युक्त ऽऽ
जोंक सम दोष ग्रहण युक्त....बक सम ध्यान शुचि युक्त ऽऽ ...5

चालनी सम गुण त्याग युक्त...कैंची सम मृदुता रिक्त ऽऽ
किंपाक फल सम मिठा युक्त...शिला सम मृदुता रिक्त ऽऽ
ऐसे जीव के पूजन दान...तप-त्याग-ध्यान-अध्ययन ऽऽ
धर्म प्रभावना तीर्थ वंदना...आत्म बिन शव यात्रा सम ऽऽ...6

सम्यग्दृष्टि के उक्त धर्म...महाफलदायक कल्पवृक्षसम ऽऽ
ईकाई सहित शून्य समान....सम्यग्दृष्टि के धर्म महान् ऽऽ
आत्मविशुद्धि से धर्म प्रारंभ...आत्म मलीनता ही सभी अधर्म ऽऽ
शुद्ध-बुद्ध आनन्द धर्म पूर्ण...'कनक' का लक्ष्य स्व-आत्मधर्म ऽऽ....7

ओबरी दि. 24.02.2018 रात्रि 8:38

सम्यक्त्वरहित जीव का लक्षण

उग्गो तिव्वो दुट्ठो दुब्भावो दुस्सुदो दुरालावो।
दुम्मदरदो विरुद्धो सो जीवो सम्मउम्मुक्को।।43।। (रयण.)

अर्थ : उग्र प्रकृति वाले, तीव्र क्रोधादि प्रकृति वाले, दुष्ट स्वभाव वाले, दुर्भाव वाले, मिथ्या शास्त्रों के श्रवण करने वाले, दुष्ट वचन के कहने वाले, मिथ्याभिमान को धारण करने वाले, आत्मधर्म से विपरीत चलने वाले और अतिशय क्रूर प्रकृति वाले मनुष्य सम्यक्त्व रहित होते हैं।

क्षुद्र स्वभावी व दुर्भावना युक्त जीव सम्यक्त्व हीन हैं

खुद्दो रुद्दो रुट्ठो अणिट्ठपिसुणा सग्गत्थि असूयो।
गायण जायण भंडण दुस्सुणसीलो दु सम्मउम्मुक्को।।44।।

अर्थ : क्षुद्र प्रकृति वाले रौद्र परिणामी, क्रोधी चुगलखोर कामी, गर्विष्ठ, असहनशील वाले, द्वेषी, गायन करने वाले, याचना करने वाले, लड़ाई झगड़ा करने वाले, दूसरों के दोषों को प्रकट करने वाले, निंद्य पापाचारी और मोही मनुष्य धर्म तथा सम्यक्त्व से रहित होते हैं।

जिन-धर्म विनाशक जीवों के स्वभाव

वाणर गद्दइ साण गय वग्घ वराह कराह।

पक्खि जलूय सहावणर जिणवरधम्म विणासु।।45।।

अर्थ : बंदर स्वभाव वाले, गधे के स्वभाव वाले, कुत्ते के स्वभाव वाले, हाथी के स्वभाव वाले, बाघ के स्वभाव वाले, शूकर के स्वभाव वाले, पक्षी के स्वभाव वाले, जलूकादि स्वभाव वाले मनुष्य श्री जिनेन्द्र देव प्रणीत धर्म को धारण नहीं कर सकते हैं। धर्म का लोप करने वाले होते हैं।

रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन की मुख्यता

सम्मविणा सण्णाणं में सच्चारित्तं ण होइ णियमेण।
तो रयणत्तयमज्झे सम्मगुणक्किट्ठमिदि जिणुदिट्ठं।।47।।

अर्थ : सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र नियम पूर्वक नहीं होते हैं। जिसके सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय में सम्यक्त्वगुण प्रशंसनीय है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है।

अहो! सबसे बड़ा कष्ट मिथ्यात्व

तणुकुट्ठी कुलभंगंकुणइ जहा मिच्छमप्पणो वि तहा।
दाणाइ सुगुण भंगंसुगइभंगं मिच्छमेव हो कट्ठं।।48।।

अर्थ : जिस प्रकार कोढ़ी रोगवाला मनुष्य कुष्ठ रोग शरीर के कारण अपने कुल को नष्ट करता है ठीक उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि मनुष्य दान पूजा चारित्र और धर्मायतनों का विध्वंस करता है, इसलिये मिथ्यात्व बहुत ही कष्टप्रद दुःखदायक है।

मिथ्यात्व के समस्त आत्मीय गुण नष्ट हो जाते हैं और सच्चे देव शास्त्र गुरू तथा धर्माचरणों से विपरीत भाव व क्रिया बचते हैं। अर्थात् मिथ्यात्व का सेवन करना महादुःखों का ही कारण हैं।

भावार्थ : मिथ्यात्व से शुभ भाव, शुभ क्रिया, शुभगति, सुकुल, सद्गुण, धर्माचरण, स्वर्ग मोक्ष आदि सभी दूर होते हैं।

सम्यग्दृष्टि ही धर्वज्ञ है

देवगुरुधम्मगुणा चारित्तं तवायार मोक्खगइ भेयं।
जिणवयणसुदिट्ठिविणा दीसइ किह जाणए सम्मं।।49।।

अर्थ : मनुष्य सम्यग्दर्शन के बिना देव गुरू धर्म क्षमादि गुण चारित्र तप मोक्षमार्ग तथा श्री जिनेन्द्र भगवान् के वचन को सही रूप से यथार्थरूप से नहीं जान सकते हैं।

भावार्थ : वास्तव में जिनके सम्यग्दर्शन नहीं है उनके देव, शास्त्र, गुरू, धर्म, उत्तम क्षमादि गुण, सामायिक छेदोपस्थापना परिहार, विहार विशुद्धि, सूक्ष्मसांप्राय यथाख्यात चारित्र को, तपाचार को और मोक्षमार्ग को भी नहीं जानते हैं।

मिथ्यादृष्टि की पहचान

एक्कु खणं ण विचिंतइ मोक्खणिमित्तं णियप्पसाहावं।
अणिसं विचित्तपावं बहुलालावं मणे विचिंतेइ।।50।।

अर्थ : मोही अज्ञानी संसारी प्राणी मिथ्यादृष्टि जीव एक क्षण मात्र भी अपने लिए मोक्ष प्राप्ति के लिए मोक्ष सिद्धि के लिए अपने आत्म स्वरूप का विचार चिंतवन मनन नहीं करता है, परन्तु दिन रात आरंभ परिग्रह आदि परवस्तु के पाप कार्यों का बार-बार विचार व चिंता करता है।

साम्य भाव का घातक

मिच्छामइमय मोहा सवमत्तो बोलए जहा भुल्लो।
तेण ण जाणइ अप्पा अप्पाणं सम्म भावाणं।।51।।

अर्थ : मिथ्यामति-मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्याबुद्धि के अभिमान से मदोन्मत्त होकर मदिरापान करने वाले मार्ग भ्रष्ट भुल्लड मनुष्य के समान यद्वा तद्वा मिथ्या प्रलाप करते हैं, और वे मोह के उदय से अपनी आत्मा को नहीं जानते हैं। तब अपनी आत्मा के समता भाव को कैसे जानेंगे? अर्थात् सर्वथा नहीं जानेंगे।

कर्मक्षय का हेतु सम्यक्त्व

मिहरो महंधयारं मरुदो मेहं महावणं दाहो।
वज्जो गिरिं जहाविय सिंज्जइ सम्मे तहा कम्मं।।52।।

अर्थ : जिस प्रकार सूर्य अंधकार को तत्काल नष्ट करता है। वायु मेघ के समूह को नाश कर देती है। दावानल वन को जला देता है। वज्र पर्वतों का भेदन

(चूर्ण) कर देता है। उसी प्रकार एक सम्यक्त्व भी समस्त कर्मों का नाश कर देने में समर्थ है।

बाल गीत (प्रकृति प्रेम कविता)

(चाल : लकड़ी की काठी...)

1. गिलहरी रानी...प्यारी भगिनी (बहिन)
   आओ बहिन...पीओ पानी
   तुझे बुलाते...मुन्ना-मुन्नी/(नाना-नानी)....ला...ला...ला...आ-जा

2. तितली प्यारी...सबसे न्यारी
   कोमल अंगी...रंग-बिरंगी
   साथ खेंलेगे...गीत गायेंगे....ला...ला...ला...आ-जा

3. भ्रमर प्यारा....गुंजन तेरा
   उड़ते जाओ....पराग खाओ
   षट्पद....गाता है प्यारा....ला...ला...ला...आ-जा

4. प्यारी सखी....हो! मधुमक्खी
   मकरन्द खाती....मधु बनाती
   परांगण करो....उपकारी बनो....ला...ला...ला...आ-जा

5. वृक्ष है! प्यारे...फल दातारे....
   प्राणवायु देते...हमें बचाते...
   प्रदूषण हर्त्ता....शीतल दाता....ला...ला...ला...आ-जा

6. पक्षी हे! प्यारे...द्विजन्म तुम्हारे...
   नाचो गाओ...मन को मोहो...
   प्यारा शरीर...गगन में चर....ला...ला...ला...आ-जा

7. बच्चे हे! प्यारे...सब के दुलारे...
   खेल तुम्हारे...पाठशाला न्यारे....
   पशु (पक्षी) नर सारे...भोला-भाला न्यारे....ला...ला...ला...आ-जा

प्रदूषण बन सकता है अपराधी प्रवृत्ति का सबब

अमरीका के 9,360 शहरों के अपराध संबंधी आँकड़ों व वायु प्रदूषण के स्तर पर 9 साल तक अध्ययन करने के बाद वैज्ञानिकों ने पाया है कि वायु प्रदूषण का बढ़ा हुआ स्तर लोगों को अनैतिक कामों के लिए भी उकसा सकता है। चाहे यह ठगी हो या अपराध। व्यवहार विज्ञानी जैकसन जी लू ने कहा कि इससे पहले अध्ययनों में बढ़े हुए प्रदूषण स्तर से एंग्जायटी की बात सामने आई थी, हमारे अध्ययन में इससे अनैतिक व्यवहार में बढ़ोतरी भी पाई गई।

पोल्यूशन से हो सकता है बर्थ डिफेक्ट भी

ताजा अमरीकी रिसर्च में पता चला है कि जो महिलाएँ प्रेग्नेंट होने के ठीक एक महीने पहले या बाद में प्रदूषित हवा में रही हैं, उनमें जन्मजात विकृति वाले बच्चों के जन्म का खतरा बढ़ जाता है। इन शोधकर्त्ताओं ने 2006 से 2010 तक ओहियो में जन्मे 290000 नवजात शिशुओं के आँकड़ों की जाँच की। फिर इनकी मम्मियों के घर के पास पोल्यूशन के स्तर में इनकी तुलना करके देखी। तुलनात्मक अध्ययन के बाद वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुँचे।

युद्ध के बाद अमेरिकी सैनिक वतन लौटे तो नेतृत्व स्टबी ने किया था, कई सम्मान मिले

प्रथम विश्व युद्ध में अमेरिकी सेना के डॉग 'स्टबी' पर बनी फिल्म, 17 मोर्चों पर रहा, दुश्मन सैनिकों को आवाज से पहचान लेता था

प्रथम विश्व युद्ध खत्म होने के सौ साल पूरे हो रहे हैं। ऐसे में युद्ध के दौरान अमेरिकी सेना के हीरो रहे डॉग स्टबी पर बनी फिल्म 13 अप्रेल को रिलीज हो रही है। स्टबी जंग के दौरान 17 मार्चों पर डटा रहा था। उसने सैनिकों को हमलों से आगाह करने के अलावा घायल सैनिकों को ढूँढ़ने और दुश्मनों के जासूस पकड़ने में भी मदद की थी। वह स्ट्रीट डॉग था, लेकिन बाद में सेना का हीरो बन गया। वाकया 1917 की गर्मियों का है। अमेरिकी सेना न्यू हैवन के येल में तैनात थी। यहाँ 102

इन्फेन्ट्री की 26वीं डिविजन युद्ध के लिए फ्रांस जाने की तैयारी कर रही थी। इसी दौरान एक सैनिक रॉबर्ट कॉनरॉय की नजर एक पपी पर पड़ी। उन्हें यह देखकर हैरानी हुई कि वह सैनिकों की परेड और सैल्यूट की नकल कर रहा था। कॉनरॉय उसे साथ ले आए और उसे 'स्टबी' नाम दिया। कुछ ही हफ्तों में रेजिमेंट को फ्रांस रवाना होना था। कॉनरॉय ने स्टबी को बड़े से कोट में छिपाया और जहाज पर सवार हो गए। कमांडर को इसका पता चल गया, लेकिन स्टबी ने उन्हें सैल्यूट किया, तो उसे साथ रखने की इजाजत दे दी। स्टीब करीब 18 महीने जंग के मैदान में रहा। वह सैनिकों की तरफ आने वाले मिसाइल शेल, मस्टर्ड गैस हमले के बारे में पहले ही आगाह कर देता था। ऐसे ही एक गैस अटैक से पहले उसने पूरे शहर को सचेत कर दिया था। इस वजह से एक महिला ने उसके लिए कोट तैयार किया था, जो स्टबी पूरी जिंदगी पहनता रहा। इतना ही नहीं, वह अमेरिकी, जर्मन और फ्रांसीसी सैनिकों की आवाज में अंतर भी पहचान लेता था। उसने जर्मन जासूस को तब तक जकड़े रखा, जब तक उसे पकड़ नहीं लिया गया।

रिसर्च का दावा-मशीनों के शोर की वजह से बदल रहा है पशु-पक्षियों का व्यवहार

शोर-शराबे की वजह से पशु-पक्षियों ने बदली भाषा, साथियों को अब और ऊँची आवाज में संदेश देने लगे

शोर-शराबे वाली जगह पर किसी से कुछ कहने के लिए हमें अपनी आवाज ऊँची और तेज करनी पड़ती है। लेकिन इसका असर अब पशु-पक्षियों पर भी दिखने लगा है। हालात ये हो गए हैं कि आम तौर पर बेजुबान माने जाने वाले इन स्पेसीज को भी अपनी आवाज और व्यवहार बदलना पड़ा है। इनमें चिड़िया से लेकर बंदर, व्हेल और डॉल्फिन तक है। इसका असर जंगलों, ऑयलफील्ड के अलावा समुद्री इलाकों में भी देखा गया है। यह चौंकाने वाली जानकारी कनाडा की यूनिवर्सिटी ऑफ मैनिटोबा के पक्षी वैज्ञानिकों की ताजा रिसर्च में सामने आई है। इसके मुताबिक ब्राजील के वर्षा वनों के किनारें पर खनन गतिविधियों की वजह से स्थानीय ब्लैक-फ्रंटेड टिटि बंदरों के व्यवहार पर असर पड़ा है। तटीय इलाकों में ड्रिलिंग, जहाजों के इंजनों की आवाज की वजह से व्हेल और डॉल्फिन ने अपना व्यवहार बदला है।

इतना ही नहीं, प्रजननकाल के दौरान इनकी आवाज में भारी बदलाव भी देखा गया है। रिसर्च के तहत कनाडा के अल्बर्टा में सवाना चिड़िया के लव सॉन्स का भी अध्ययन किया गया। रिसर्च में शामिल मियागो वॉरिंगटन कहते हैं, 'अगर कोई चिड़िया अपने साथी को बुलाने के लिए गीत गाती है, लेकिन ऑयफील्ड पर पंप और मशीनों की आवाज में उसकी आवाज दब जाती है। ऐसे में वह क्या करेगी? लिहाजा इन पशु-पक्षियों ने अपनी आवाज और ऊँची और तेज कर दी है, जिससे उनके साथी तक संदेश पहुँच सके।' मेक्सिको में ऑयल-गैस इंफ्रांस्ट्रक्चर के शोर की वजह से माउंटेन ब्लू बर्ड्स में तनाव बढ़ने के लक्षण मिले हैं।

शोर-शराबे की....

उसके अलावा उनके बच्चों की ग्रोथ पर भी असर पड़ा है। जो विकसित हुए बिना ही जन्म ले रहे हैं। वॉरिंगटन शोर-शराबे वाली गतिविधियों की वजह से हमारे आस-पास की प्राकृतिक दुनिया पर पड़ने वाले असर का अध्ययन कर रहे हैं। इसके बाद उनकी टीम शोर-शराबे की वजह से पशु-पक्षियों के व्यवहार में बदलाव के बाद उनकी प्रजनन क्षमता पर होने वाले असर का अध्ययन कर रही है।

साथी को बुलाने के लिए अपनी विशेष धुन भी जोड़ने लगे हैं पक्षी

रिसर्च टीम ने कनाडा में 200 किमी के दायरे में 26 साइट्स पर पशु-पक्षियों का अध्ययन भी किया। इसमें 73 सवाना मेल चिड़िया पर रिसर्च की गई। कनाडा में ऑयलफील्ड में पक्षियों के आवाज और व्यवहार पर हुई रिसर्च में पता चला कि लव सॉन्स के दौरान हर पक्षी अपनी एक विशेष धुन भी जोड़ता है। अगर वहाँ पंप चल रहा है तो चिड़िया उसके हिसाब से अपनी आवाज में उतार-चढ़ाव लाती है। पता चला कि जनरेटर पंप चलते वक्त ये सबसे ऊँची आवाज करती है।

निन्दक व विघ्नकर्त्ता सबसे महापापी क्यों!?

(निन्दक व विघ्नकर्त्ता न्यायपूर्ण युद्धकर्त्ता-चोर व्यसनी से भी अधिक पापी)

(चाल : आत्मशक्ति... क्या मिलिए...)

देव-शास्त्र-गुरु गुण-गुणी की, निन्दा करना है महान् पाप।
धर्मकार्य व धार्मिक जनों को, विघ्न पहुँचाना भी महान् पाप।।
चोर-व्यसनी व योद्धा भी गए, तद्भव में स्वर्ग या मोक्ष।

किन्तु निन्दक संसार मध्य में, अनेक भव तक पाये दुःख।।(1)

तीर्थंकरों से ले राम-पाण्डव तक ने, किया है न्यायपूर्ण युद्ध।
अधिकांश तो मोक्ष गये, कुछ गये उच्चतम स्वर्ग तक।।
चोर अंजन व विद्युत् चोर आदि, गये स्वर्ग या मोक्ष।
ऐसा ही अनेक पतित व व्यसनी, साधना से गये स्वर्ग या मोक्ष।।(2)

किन्तु उक्त निन्दक अनेक भव तक, पाते हैं दुःख अनेक।
यथा श्रीपाल व उनके मित्र व, मुनि निन्दक षाठ हजार लोग।।
अनेक उदाहरण व कर्म सिद्धान्त का, वर्णन हुआ है आगम में।
इसका रहस्य सामान्य लोग, नहीं जानते हैं सूक्ष्मता में।।(3)

इसमें प्रमुख कारण होता है, उनके भावों की विभिन्नता।
तीर्थंकरादि के भाव सम्यक्, किन्तु निन्दक की मिथ्या।।
धर्मकार्य व धार्मिक जनों में, जो करते हैं विघ्न बाधा।
विघ्न कारक व निन्दक जनों को, बन्धते हैं कर्म घातिया।।(4)

ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीय, अन्तराय-मोहनीय कर्म बन्धे।
जिससे जीव अनेक भव तक, संसार में बहु दुःख भोगे।।
सम्यग्दृष्टि न करते निन्दा, देव-शास्त्र-गुरु-गुण-गुणी की।
जिससे उन्हें घाती कर्म न बन्धे, साधना से पाते सिद्धि।।(5)

घातिया कर्म के तीव्र उदय से, निन्दक न बन पाते सम्यक्त्वी/(सम्यग्दृष्टि)
श्रावक व साधु नहीं बन पाते, जिससे मिलती दुर्गति।।
कर्म सिद्धान्त है गहन-गम्भीर, इसे न समझते मोही-अज्ञानी।
स्व-पर-विश्व कल्याण हेतु, संक्षेप में वर्णन किया 'कनकनन्दी'।।(6)

ओबरी 20.02.2018 रात्रि 11:35

सन्दर्भ-

ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्त्रव

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः।।(10)

ज्ञान और दर्शन के विषय में प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादना और उपघात ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्त्रव हैं।

1. **प्रदोष** – किसी के ज्ञानकीर्तन (महिमा सुनने) के अनन्तर मुख में से कुछ न कहकर अंतरंग में पिशुनभाव होना, ताप होना प्रदोष हैं। मोक्ष की प्राप्ति के साधनभूत मति, श्रुत आदि पाँच ज्ञानों की वा ज्ञान के धारी की प्रशंसा करने पर वा उसकी प्रशंसा सुनने पर मुख से कुछ नहीं कहकर के मानसिक परिणामों में पैशून्य होता है वा अंतकरण में उसके प्रति जो ईर्ष्या का भाव होता है, वह प्रदोष कहलाता है।

2. **निह्नव** - दूसरे के अभिसन्धान से ज्ञान का व्यपलाप करना निह्नव है। यत् किञ्चित परनिमित्त को लेकर किसी बहाने से किसी बात को जानने पर भी मैं इस बात को नहीं जानता हूँ, पुस्तक आदि के होने पर भी ''मेरे पास पुस्तक आदि नहीं है'' इस प्रकार ज्ञान को छिपाना ज्ञान का व्यपलन करना, ज्ञान के विषय में वञ्चन करना निह्नव है।

3. **मात्सर्य**- देय ज्ञान को भी योग्य पात्र के लिए नहीं देना मात्सर्य है। किसी कारण से आत्मा के द्वारा भावित, देने योग्य ज्ञान को भी योग्य पात्र के लिए नहीं देना मात्सर्य है।

4. **अन्तराय**-ज्ञान का व्यवच्छेद करना अन्तराय है। कलुषता के कारण ज्ञान का व्यवछेद करना, कलुषित भावों के वशीभूत होकर ज्ञान के साथ पुस्तक आदि का व्यवच्छेद करना, नाश करना, किसी के ज्ञान में विघ्न डालना अन्तराय है।

5. **आसादना**-वचन और काय से वर्जन करना आसादना है। दूसरे के द्वारा प्रकाशित ज्ञान का काय एवं वचन से वर्जन (गुण कीर्तन, विनय आदि नहीं करना) आसादना है।

6. **उपघात**-प्रशस्त ज्ञान में दूषण लगाना उपघात है। स्वकीय बुद्धि और हृदय कलुषता के कारण प्रशस्त ज्ञान भी अप्रशस्त, युक्त भी अयुक्त प्रतीत होता है अतः समीचीन ज्ञान में भी दोषों का उद्भावन करना, झूठा दोषारोपण करना उपघात कहलाता है उसको उपघात जानना चाहिए।

आसादना और उपघात में एकत्व नहीं है क्योंकि आसादना में विद्यमान ज्ञान का विनय-प्रकाशन, गुणकीर्तन आदि न करके अनादर किया जाता है और उपघात में ज्ञान को अज्ञान कहकर ज्ञान का ही नाश किया जाता है अथवा ज्ञान के नाश करने का अभिप्राय रहता हैः अतः आसादना और उपघात में भेद स्पष्ट है।

तत् शब्द से ज्ञान-दर्शन ग्रहण किये जाते हैं। तत् शब्द से ज्ञान-दर्शन के प्रति

निर्देश किया गया है। अर्थात् ज्ञान और दर्शन के प्रति प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादना और उपघात ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म के आस्रव के कारण है।

प्रदोषादि के विषयभेद से भेद सिद्ध होने से ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव पृथक्-पृथक हैं। ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव भिन्न-भिन्न समझने चाहिये, क्योंकि विषय-भेद से प्रदोषादि भिन्न हो जाते हैं। ज्ञान विषयक प्रदोषादि ज्ञानावरण के और दर्शन विषयक प्रदोषादि दर्शनावरण के आस्रव के कारण होते हैं। आचार्य और उपाध्याय के प्रतिकूल चलना, अकाल में अध्ययन करना, अश्रद्धा, शास्त्राभ्यास में आलस्य करना, अनादर से अर्थ का श्रवण, तीर्थोपरोध (दिव्य ध्वनि) के काल में स्वयं व्यख्यान करने लगना, स्वकीय बहुश्रुत का गर्व करना, मिथ्योपदेश देना, बहुश्रुतवान का अपमान वा अनादर करना, अपने पक्ष का दुराग्रह, स्वपक्ष के दुराग्रह के कारण असंबद्ध प्रलाप करना, सूत्र विरुद्ध बोलना, असिद्ध से ज्ञानाधिगम (असिद्धि से ज्ञान-प्राप्ति) शास्त्र विक्रय और हिंसादि कार्य ज्ञानावरण कर्म के आस्रव के कारण है। दर्शन मात्सर्य, दर्शनान्तराय, आँखें फोड़ना, इन्द्रियों के विपरीत प्रवृत्ति, अपनी दृष्टि का गर्व, बहुत देर तक सोये रहना, दिन में सोना, आलस्य, नास्तिक्य, सम्यग्दृष्टियों में दूषण लगाना, कुतीर्थ प्रशंसा, जीव हिंसा और मुनिगणों के प्रति ग्लानि के भाव आदि भी दर्शनावरण कर्म के आस्रव के कारण हैं।

महाभारत में कहा भी है-

ये पुरा मनुजा देवि ज्ञानदर्पसमन्विताः।
श्लाघमानाश्च तद् प्राप्य ज्ञानाहङ्करमोहिताः।।
वदन्ति ये परान् नित्य ज्ञानाधिक्येनदर्पिताः।
ज्ञानादसूयां कुर्वन्ति न सहन्ते हि चापरान्।।
तादृशा मरण प्राप्तः पुनर्जन्मनि शोभने।
मानुष्य सुचिरात् प्राप्य तत्र बोधविवर्जिताः।।
भवन्ति सततं देवि यतत्रो हीनमेधसः।

जो मनुष्य ज्ञान के घमण्ड में आकर अपनी झूठी प्रशंसा करते हैं और ज्ञान पाकर अहंकार से मोहित हो दूसरों पर आक्षेप करते हैं, जिन्हें सदा अपने अधिक ज्ञान का गर्व रहता है, जो ज्ञान से दूसरों को दोष प्रकट किया करते है, और दूसरे ज्ञानियों का नहीं सहन कर पाते हैं, शोभने! ऐसे मनुष्य मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म लेने पर चिरकाल के बाद मनुष्य योनि पाते हैं। देवि! उस जन्म में वे सदा यत्न करने पर भी बोधहीन और बुद्धि रहित होते हैं।

दर्शनमोहनीय का आस्रव

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य। (13)

केवली श्रुत, संघ, धर्म और देव इनका अवर्णवाद दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव है।

जिनका ज्ञान आवरण रहित है वे केवली कहलाते हैं। अतिशय बुद्धि वाले गणधर देव उनके उपदेशों का स्मरण करके जो ग्रंथों की रचना करते हैं वह श्रुत कहलाता है। रत्नत्रय से युक्त श्रमणों का समुदाय संघ कहलाता है। सर्वज्ञ-द्वारा प्रतिपादित आगम में उपदिष्ट अंहिसा ही धर्म है। चार निकाय वाले देवों का कथन पहले कर आये हैं। गुण वाले बड़े पुरुषों में जो दोष नहीं है उनका उनमें उद्भावन करना अर्वणवाद है। इन केवली आदि के विषय में किया गया अवर्णवाद दर्शनमोहनीय के आस्रव का कारण है। यथा केवली कवलाहार से जीते है इत्यादि रूप से कथन करना केवलियों का अवर्णवाद है। शास्त्रों में माँस भक्षण आदि को निर्दोष कहा है इत्यादि रूप से कथन करना श्रुत का अवर्णवाद है। ये शूद्र है, अशुचि है, इत्यादि रूप से अपवाद करना संघ का अवर्णवाद है। जिन देव के द्वारा उपदिष्ट धर्म में कोई सार नहीं जो इसका सेवन करते हैं वे असुर होंगे इस प्रकार कथन करना धर्म का अवर्णवाद है। देव सुरा और माँस आदि का सेवन करते हैं इस प्रकार का कथन देवों का अवर्णवाद है।

नीच गोत्र का आस्रव

परात्मनिन्दाप्रशंसे सद्सद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य। (25)

परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, सद्गुणों का उच्छादन, असद्गुणों का उद्भावन ये नीच गोत्र के आस्रव हैं।

सच्चे या झूठे दोष को प्रकट करने की इच्छा निन्दा है। गुणों के प्रकट करने का भाव प्रशंसा है। पर और आत्मा शब्द के साथ इनका क्रम से सम्बन्ध होता है। यथा परनिन्दा और आत्मप्रशंसा। रोकने वाले कारणों के रहने पर प्रकट नहीं करने की वृत्ति होना उच्छादन है और रोकने वाले कारणों का अभाव होने पर प्रकट करने की वृत्ति होना उद्भावन है। यहाँ भी क्रम से सम्बन्ध होता है। यथा-सद्गुणोच्छादन और असद्गुणोद्भावना इस सब को नीच गोत्र के आस्रव के कारण जानना चाहिए।

उच्च गोत्र कर्म का आस्रव

तद्विपर्ययो नीचैवृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य। (26)

उनका विपर्यय अर्थात् पर प्रशंसा, आत्मनिन्दा, सद्गुणों का उद्भावन और असद्गुणों का उच्छादन तथा नम्रवृत्ति और अनुत्सेक ये उच्च गोत्र के आस्रव हैं।

जो गुणों में उत्कृष्ठ हैं उनके प्रति विनय से नम्र रहना नीचैर्वृत्ति है। ज्ञानादि की अपेक्षा श्रेष्ठ होते हुए भी उनका मद न करना अर्थात् अहंकार रहित होना अनुत्सेक है। ये उत्तर अर्थात् उच्च गोत्र के आस्रव के कारण है।

तीर्थेश गुरु साङ् घानामुच्चैः पदमयात्मनाम्।
प्रत्यहं व नुतिं भक्तिं तन्वन्ति गुण कीर्तनम्।।(196)
स्वस्य निन्दां च येऽत्रार्या गुणिदोषोपगूहनम्।
तेऽपुत्र त्रिजगद्वन्द्यं गोत्रंश्रयन्ति गोत्रतः।।(197)

जो आर्यजन तीर्थंकर, सुगुरु, जिनसंघ और उच्चपदमयी पंच परमेष्ठियों की प्रतिदिन पूजा-भक्ति करते है, उनके गुणों का कीर्तन करते है उन्हें नमस्कार करते है, अपने दोषों की निन्दा करते हैं और दूसरों गुणीजनों के दोषों का उपगूहन करने हैं, वे पुरुष उच्च गोत्र कर्म के परिपाक से परभव में त्रिजगद्-वन्द्य उच्च गोत्र कर्म का आश्रय प्राप्त करते हैं अर्थात् तीर्थंकर होते हैं।

अन्तराय कर्म का आस्रव

विघ्नकरणमन्तरायस्य।(27)

The inflow of obstructive अन्तराय karma is caused by disturbing others in दान charity लाभ gain, भोग enjoyment of consumable things; and वीर्य making use of their powers.

दानादिक में विघ्न डालना अन्तराय कर्म का आस्रव है।

दानादि का विघात करना विघ्न कहलाता है। दानादि अर्थात् दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य। किसी के दान लाभादि में विघ्न उपस्थित करना विघ्न कहलाता है। ज्ञान का प्रतिच्छेद सत्कारोपघात (किसी के सत्कार में विघ्न डालना) दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, स्नान, अनुपेलन, गन्ध, माल्य, आच्छादन, विभूषण, शयन,

आसन, भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और परिभोग आदि में विघ्न करना, किसी के विभव, समृद्धि में विस्मय करना, द्रव्य का त्याग नहीं करना, द्रव्य के उपयोग के समर्थन में प्रमाद करना, देवता के लिए निवेदित किये गये या अनिवेदित किये गये द्रव्य ग्रहण करना, देवता का अवर्णवाद करना, निर्दोष उपकरणों का त्याग, दूसरों की शक्ति का अपहरण, धर्म का व्यवच्छेद करना, कुशल चारित्र वाले तपस्वी, गुरु तथा चैत्य की पूजा में व्याघात करना, दीक्षित, कृपण, दीन, अनाथ आदि को दिये जाने वाले वस्त्र, पात्र, आश्रय, आदि में विघ्न करना, परनिरोध, बन्धन, गुह्य अंगच्छेदन, कान, नाक, ओंठ आदि को काट देना, प्राणिवध आदि अन्तराय कर्म के आस्रव के कारण हैं।

तपस्विगुरुचैत्यानां पूजालोपप्रवर्तनम्।
अनाथदीनकृपाणभिक्षादिप्रतिषेधनम्।।55।।

वधबन्धनिरोधैश्च नासिकाच्छेदकर्तनम्।
प्रमादद्देवतादत्तनैवेद्यग्रहणं तथा।।56।।

निरवघोपकरणपरित्यागो वधोऽङ्गनाम्।
दानभोगोपभोगादिप्रत्यूहकरणं तथा।।57।।

ज्ञानस्य प्रतिषेधश्च धर्मविघ्नकृतिस्तथा।
इत्येवमन्तरायस्य भवन्त्यास्रवहेतवः।।58।।

तपस्वी, गुरु और प्रतिमाओं की पूजा न करने की प्रवृत्ति चलाना, अनाथ, दीन तथा कृपण मनुष्यों को भिक्षा आदि देने का निषेध करना, वध-बन्धन तथा अन्य प्रकार की रुकावटों के साथ पशुओं की नासिका आदि का छेद करना, देवताओं को चढ़ाये हुए नैवेघ का प्रमाद से ग्रहण करना, निर्दोष उपकरणों का परित्याग करना (जिन पीछी या कमण्डल आदि उपकरणों में कोई खराबी नहीं आई है उन्हें छोड़कर नये ग्रहण करना), जीवों का घात करना, दान-भोग-उपभोग आदि में विघ्न करना, ज्ञान का प्रतिषेध करना-स्वाध्याय या पठन-पाठन का निषेध करना तथा धर्मकार्यों में विघ्न करना ये सब अन्तराय-कर्म के आस्रव के हेतु हैं। बहुगुण युक्त, ज्ञान-विज्ञान-नीति-समाजनीति-राजनीति-न्यायनीति के संवाह का, प्रवर्तक वचन-शक्ति का सदा-सर्वदा-सर्वथा सदुपयोग रूप में ही प्रयोग करना अनिवार्य है अन्यथा दुरुपयोग से विनाश-ही-विनाश संभव है। इसलिए कहा है-''**बातें हाथी पाये, बातें हाथी पाये**'' अर्थात् अच्छे वचनों से पुरस्कार रूप में हाथी मिल सकता है तो गलत वचनों

से हाथी के पैर के नीचे दबाकर मृत्यु दण्ड भी प्राप्त हो सकता है। इसलिए वचन बोलने के पहले तौलकर बोलना चाहिए अन्यथा मौन रहना ही श्रेयस्कर है। इसलिए नीतिकार कहते है-''बोलना चाँदी है तो मौन सोना है।'' ''बोलने से जानकारी बढ़ती है तो मौन से विवेक बढ़ता है।'' अतएव बोलने से पहले विवेक से तौलकर बोले। कथंचित् धनुष से छोड़ा हुआ बाण का संहार (वापिस) करना असंभव है परन्तु मुख से छोड़ा हुआ वाक्-बाण को संहार करना असंभव या असंभवसम या कष्ट साध्य है। जिस प्रकार कि आहार आदि दाता विशेष, पात्र विशेष, द्रव्य विशेष, विधि विशेष, क्षेत्र विशेष, काल विशेष आदि के अनुसार दिया जाता है उसी प्रकार या उससे भी अधिक महादान स्वरूप ज्ञानदान-हितोपदेश को दातादि विशेष से युक्त होकर देना चाहिए लेना चाहिए अन्यथा लाभ से अधिक हानियाँ संभव हैं।

हितापदेशी के मधुर/स्नेहिल गुण

णिद्धं मधुरं हिदयंगमं च पल्हादणिज्जमेगंते।
तो पल्होवेदव्वो खवओ से पण्णवंतेण।।(477) भ.आरा.

जो अपना अपराध नहीं कहता उस क्षपक को समझाने वाले आचार्य को एकांत में स्नेह से भरे, कानों को सुखकर और हदय में प्रवेश करने वाले सुखदायक वचनों से शिक्षा देना चाहिए। प्राप्त सन्मार्ग रत्नत्रय के निरतिचार पालन में सावधान आयुष्मन् लज्जा, भय और मान छोड़कर दोषों को निवेदन करो। गुरुजन माता-पिता के समान होते हैं उनसे कहने में लज्जा कैसी? वे अपने दोष की तरह दूसरे यतियों के भी दोष किसी से नहीं कहते। जो यति धर्म पर मिथ्या दोषारोपण को नष्ट करने में तत्पर रहते हैं वे क्या अपयश फैला सकते है? मोक्ष मार्ग में प्रधान सम्यग्दर्शन है और यतिजन में दूषण लगाना सम्यग्दर्शन का अतिचार है। रत्नत्रयरूपी कमलों का वन यदि अतिचार रूपी हिमपात से नष्ट हो तो वह शोभित नहीं होता। पर निन्दा से नीचगोत्र कर्म का आश्रव होता है। जो दूसरों की निंदा करता है वह स्वयं अनेक जन्मों में निन्दा का पात्र बनता है। दूसरे के मन को असह्य संताप देने वाले के असाता वेदनीय कर्म का बंध होता है। साधुजन भी निन्दा करते हैं कि अपने धर्मपुत्र को यह इस प्रकार अपयश रूप कीचड़ से क्यों लिप्त करता है। इस तरह दूसरों के दोषों को प्रकट करना अनेक अनर्थों का मूल है। कौन समझदार उसे करना पसन्द करेगा?

हितापदेशी के दूसरों को दोष न कहने का गुण

लोहेण पीदमुदयं व जस्स आलोचिदा अदीचारा।
ण परिस्सवंति अण्णत्तो सो अप्परिस्सवो होदि।।(488)

जैसे तपाये हुए लोहे के द्वारा पिया गया जल बाहर नहीं जाता वैसे ही जिस आचार्य से कहे गये दोष अन्य मुनियों पर प्रकट नहीं होते, वह आचार्य अपरिश्राव गुण से युक्त होता है।

दोष कथक जिनधर्मी नहीं

आयरियाणं वीसत्थदाए भिक्खु कहेदि सगदोसे।
कोई पुण णिद्धम्मो अण्णेसिं कहेदि ते दोसे।।(490)

भिक्षु विश्वासपूर्वक अपने दोषों को आचार्यों से कहता है। कोई आचार्य जो जिन भगवान् के द्वारा कहे गये धर्म से भ्रष्ट होता है वह भिक्षु के द्वारा आलोचित दोषों को दूसरों से कह देता है कि इसने यह अपराध किया है अर्थात् ऐसा करने वाला आचार्य जिनधर्म से बाह्य होता है।

दोष कथन से मिथ्यात्व की आराधना

तेणं रहस्सं भिदंतएण साधु तदो य परिचत्तो।
अप्पा गणो य संघो मिच्छात्ताराधणा चेव।।(491)

उस आलोचित दोष को प्रकट करने वाले आचार्य ने ऐसा करके उस साधु का ही त्याग कर दिया। क्योंकि उसने अपने चित्त में यह विचार नहीं किया कि मेरे द्वारा इसके दोष प्रकट कर देने पर वह लज्जित होकर दुःखी होगा अथवा आत्मघात कर लेगा, या क्रुद्ध होकर रत्नत्रय को ही छोड़ देगा तथा उस आचार्य ने अपनी आत्मा का त्याग किया, गण का त्याग किया,संघ का त्याग किया। इतना ही नहीं उसके मिथ्यात्व की आराधना का दोष भी होता है।

दोष कथक साधु को संघ से बहिष्कार करने योग्य

लज्जाए गारवेण व कोई दोसे परस्स कहिदोवि।
विपरिणामिज्ज उधावेज्ज व गच्छेज्ज वाध मिच्छतं।। (492)

निर्यापकाचार्य के द्वारा दूसरे से साधु के गुप्त दोष कहने पर कोई क्षपक लज्जावश या मान की गुरुतावश विपरीत परिणाम कर सकता है। यह मेरा गुरु नहीं है। यदि मैं इस प्रिय होता तो यह मेरा दोष क्यों कहता। यह गुरु मेरे बारे में चलते-फिरते प्रिय है ऐसा जो मैं सोचता था वह आज नष्ट हो गया, इस प्रकार की चिंता विपरीत परिणाम हैं। अथवा दोष प्रकट कर देने से कुपित होकर रत्नत्रय को छोड़ सकता है।

दोष कथक आत्मा के त्यागी

कोई रहस्सभेदे कदे पदोसं गदो तमारियं।
उद्दावेज्ज व गच्छं भिंदेज्ज व होज्ज पडिणीओ।।(493)

रहस्य भेद करने पर कोई क्षपक द्वेषी बनकर उस आचार्य को मार सकता है अथवा गण में भेद डाल सकता है कि इस स्नेह रहित आचार्य से क्या लेना-देना है? जैसे इसने मेरा अपराध प्रकट कर दिया उसी प्रकार तुम्हें भी अपराध निवेदन करने में दोष लगाएगा ऐसा कहकर अन्य साधुओं को विरोधी बनाकर गण में भेद डाल सकता है। अथवा विरोधी हो सकता है।

दोष कथक गण/संघ के त्यागी

जह धरिसिदो इमो तह अम्हं पि करिज्ज धरिसणमिमोत्ति।
सव्वो वि गणो विप्परिणमेज्ज छंडेज्ज वायरियं।।(494)

जैसे इस आचार्य ने अमुक साधु को प्रकट किया उसी प्रकार यह हमारा दोष भी प्रकट कर देगा, ऐसा सोचकर समस्त गण-गण से अलग हो सकता है अथवा आचार्य का त्याग कर सकता है।

शंका-इस गाथा में तो कहा है कि गण आचार्य को छोड़ देता है और पूर्व गाथा में कहा है कि आचार्य ने गण का त्याग किया। इन दोनों कथनों की संगाति नहीं बैठती?

समाधान-अतः दोषों को प्रकट करने वाले आचार्य ने गण का त्याग किया अतः गण भी उसे छोड़ देता है।

तह चेव पवयणं सव्वमेव विप्परिणयं भवे तस्स।
तो से दिसावहारं करेज्ज णिज्जुहणं चावि।।(495)

जिसमें रत्नत्रय ''प्राच्येते'' कहा जाता है वह प्रवचन है इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रवचन शब्द का अर्थ यहाँ संघ है। सभी संघ आचार्य के विरुद्ध हो सकता है और आचार्य पद को छीन सकता है अथवा उसका त्याग कर सकता है।

सगणे व परगणे वा परपरिपवादं च मा करेज्जाह।
अच्चासादणविरदा होह सदा वज्जभीरु य।।(371)
आयासवेर भयदुक्खसोयलहुगत्तणाणि य करेइ।
परणिंदा वि हु पावा दोहग्गकरी सुयणवेसा।।(372)

अपने गण में या दूसरे गण में दूसरों की निन्दा नही करनी चाहिए। अति आसादना से विरह रहो, सदा पाप से डरो।

पर निन्दा आयास, वैर, भय, दुःख, शोक और लघुता को करती है, पाप रूप है, दुर्भाग्य को लाती है और सज्जनों को अप्रिय है।

किच्चा परस्स णिदं जो अप्पाणं ठवेदुमिच्छेज।
सो इच्छदि आरोग्गं परम्मि कडुओसहे पीए।।(373)

जो पर की निन्दा करके अपने को गुणी कहलाने की इच्छा करता है वह दूसरे के द्वारा कड़वी औषधि पीने पर अपनी निरोगता चाहता है अर्थात् जैसे दूसरे के औषधि पीने पर आप निरोग नहीं हो सकते है। वैसे ही दूसरे की निन्दा करके कोई स्वयं गुणी नहीं बन सकता।

दट्ठूण अण्णदोसं सप्पुरिसो लज्जिओ सयं होइ।
रक्खइ य सयं दोसंव तयं जणजंपणभएण।।(374)

सत्पुरुष दूसरों के दोष देखकर स्वयं लज्जित होता है। लोकापवाद के भय से वह अपनी तरह दूसरों के भी दोष को छिपाता है।

अप्पो वि वरस्स गुणो सप्पुरिसं पप्प बहुदरो होदि।
उदए व तेल्लबिंदु किह सो जंपिहिदि परदोसं।।(375)

दूसरे का छोटा-सा भी गुण सत्पुरुष को पाकर अति महान् हो जाता है। जैसे तेल की बूँद पानी में फैलकर महान् हो जाती है तब वह सत्पुरुष दूसरे के दोष को कैसे कह सकता है?

एसो सव्वसमासो तह जतह जह हवेज्ज सुजणम्मि।
तुज्झं गुणेहिं जणिदा सव्वत्थ कि विस्सुदा कित्ती।।(376)

यह समस्त उपदेश का सार है। ऐसा यत्न करो जिससे सज्जनों में तुम्हारे गुणों

से उत्पन्न हुई कीर्ति सर्वत्र फैले।

एस अखंडियसीलो बहुस्सुदो य अपरोवतावी य।
चरण गुणसुट्ठिदोत्तिय घण्णस्स खु घोसणा भमदि।।(377)

यह साधु अखण्डित समाधि के धारी है, बहुश्रुत हैं, दूसरों को कष्ट नहीं देते और चारित्र गुण में अच्छी तरह स्थित हैं। पुण्यशाली का यह यश सर्वत्र फैलता है।

बाढत्ति भणिदूणं ऐदं णो मंगलेत्ति य गणो सो।
गुरुगणपरिणद भावो आणंदंसुं णिवाणेइ।।(378)

इस प्रकार गुरु का उपदेश सुनकर संघ ''हमें स्वीकार हैं'' ऐसा कहकर आपके ये वचन हमारे लिए अत्यंत मंगल कारक है, ऐसा कहता है तथा गुरु के गुणों में मन लगाकर आनंद के आसूँ गिराता है।

भगवं अणुग्गहो में जं तु सुदोहोव्व पालिदा अम्हे।
सारणवारणपडिचोदणाओ धण्णा हु पावेंति।।(379)

भगवान्! आपका हम पर बड़ा अनुग्रह है। आपने अपने शरीर की तरह हमारा पालन किया है तथा ''यह करो'' और ''वह मत करो'' इत्यादि शिक्षा दी है। भाग्यशाली ही ऐसी शिक्षा प्राप्त करते है।

अम्हे वि खमावेमो जं अण्णाणा पमादरागेहिं।
पडिलोमिदा य आणा हिदोवंदेस करिताण।।(380)

आपकी आज्ञा और हित का उपदेश करने पर हमने जो अज्ञान, प्रमाद और रागवश उसके प्रतिकूल आचरण किया, उसके लिए हम भी आपसे क्षमा माँगते हैं।

सहिदय सकण्ण याओ कदा सचक्खु य लद्धसिद्धिपहा।
तुज्झ वियोगेण पुणो णट्ठदिसाओ भविस्सामो।।(381)

आपने हमें हृदय युक्त अर्थात् विचारशील बनाया। हमें संपूर्ण बनाया अर्थात् आपके उपदेश सुनकर कानों का फल प्राप्त किया आपने हमें आँखे प्रदान की अर्थात् हमें शास्त्र स्वाध्याय में लगाया तथा आपके प्रसाद से हमने मोक्ष प्राप्त किया। अब आपके वियोग से हम दिशाहीन हो जायेंगे। हमें कोई मार्ग दिखाने वाला नहीं रहेगा।

दोष कथन से मिथ्यात्व की आराधना क्यों?

जदि धरिसणमेरिसयं करेदि सिस्सस्स चेव आयरिओ।
धिद्धि अपुट्ठधम्मो समणोत्ति भणेज्ज मिच्छजणो।।(496)

यदि आचार्य अपने शिष्यों को ही इस प्रकार दोष प्रकट करके दोषी करते हैं तो इन अपुष्ट धर्म वाले श्रमणों को धिक्कार है ऐसा मिथ्यादृष्टि लोग कहेंगे।

इच्चेवमादिदोसा ण होंति गुरुणो रहस्सधारिस्स।
पुट्ठेव अपुट्ठे वा अपरिस्साइस्स धीरस्स।।(497)

जो आचार्य पूछने पर अथवा बिना पूछे शिष्य के द्वारा प्रकट किये दोषों को दूसरों से नहीं कहता वह रहस्य को दूसरों से नहीं कहता वह रहस्य गुप्त रखने वाला अपरिश्रावी होता है और उसे ऊपर कहे दोष जरा भी नहीं छूते।

भाव विशुद्धि उत्कृष्ट तप से भी श्रेष्ठ

अज्झवसाणविसुद्धीए वज्जिदा जे तवं विगट्ठंपि।
कुव्वंति बहिल्लेस्सा ण होइ सा केवला सुद्धी।।(259) भ.आरा.

परिणामों की विशुद्धि को छोड़कर जो उत्कृष्ट भी तप करते हैं उनकी चित्तवृत्ति पूजा-सत्कार आदि में ही लगी होती है। उनके अशुभ कर्म के आस्रव से रहित शुद्धि नहीं होती। अर्थात् दोषों से मिली हुई शुद्धि होती है।

अविगट्ठ पि तवं जो करेइ सुविसुद्धसक्कलेस्साओ।
अज्झवसाणाकविसुद्धो सो पावदि केवलं सुद्धि।। (260)

जो अति विशुद्ध शुक्ल लेश्या से युक्त और विशुद्ध परिणाम वाला अनुत्कृष्ट भी तप करता है वह केवल शुद्धि को पाता है। यह गाथा का अर्थ है।

अज्झवसाणाकविसुद्धी कसायकलुसीकदस्स णत्थित्ति।
अज्झवसाणाकविसुद्धी कसायसल्लेहणा भणिदा।।(261)

जिसका चित्त कषाय से दूषित है उसके परिणाम विशुद्ध नहीं होते। इसलिये परिणाम विशुद्ध को कषाय संल्लेखना कहा है।

विशेषार्थ-जिस मुनि का चित्त क्रोधग्नि के द्वारा कलुषित है उस मुनि के परिणाम विशुद्ध नहीं हैं। अतः उसके कषाय संल्लेखना नहीं है। कषाय के कृश करने को कषाय संल्लेखना कहते हैं और कषाय के कृश हुए बिना परिणाम विशुद्धि नहीं होते। अतः परिणाम विशुद्धि के साथ कषाय संल्लेखना का साध्य साधन भाव संबंध है।

कोधं खमाए माणं च मद्दवेणाज्जवेण मायं च।
संतोसेण य लोहं जिणह खु चत्तारि वि कषाय।।(262)

जो शुभ परिणामों के प्रवाह में बहता है वही चार कषायों की संल्लेखना करता है यह कहकर, सामान्य से चारों कषायों को कृश करने का उपाय उनके प्रतिपक्षी चार प्रकार के परिणाम हैं, यह कहते हैं-

क्रोध को क्षमा से, मान को मार्दव से, माया को आर्जव से और लोभ को संतोष से, इस प्रकार चारों कषायों को जीतो।

कोहस्य य माणस्य य मायालोभण सो ण एदि वसं।
जो ताण कसायाणं उत्पत्ति चेव वज्जेइ।।(263)

उन कषायों की उत्पत्ति को ही रोक देता है वह क्रोध, मान, माया, लोभ के वश में नहीं होता।

तं वत्थुं मोत्तव्वं जं पडि उप्पज्जदे कसायग्गि।
तं वत्थुमल्लिएज्जो जात्थोवसमो कसायाणां।।(264)

उस वस्तु को छोड़ देना चाहिए जिसको लेकर कषाय रूपी आग उत्पन्न होती है और उस वस्तु को अपनाना चाहिए जिसके अपनाने से कषायों का उपशमन हो।

जइ कहवि कसायग्गी समुट्ठिदो होज्ज विज्झवेदव्वो।
रागद्दोसुप्पत्ती विज्झादि हु परिहरतस्स।।(265)

यदि थोड़ी भी कषाय रूपी आग उठती हो तो उसे बुझा दें। जो कषाय को दूर करता है उसके राग-द्वेष की उत्पत्ति शांत हो जाती है। नीच जन की संगति की तरह कषाय हृदय को जलाती है। अशुभ आंगोपांग नामकर्म के उदय से जो मुख विरूप होता है जैसे धूल पड़ने से आँख लाल हो जाती है वैसे ही क्रोध से मनुष्य जो चाहे बोल देता। जैसे जिस पर भूत का प्रकोप होता है वह कुछ भी करता है वैसे ही क्रोधी मनुष्य जो चाहे करता है। कषाय समीचीन ज्ञानरूपी दृष्टि को मलिन कर देती है। सम्यग्दर्शन रूपी वन को उजाड़ देती है। चारित्ररूपी सरोवर को सुखा देती है। तपरूपी पत्रों को जला देती है। अशुभकर्म रूपी बेल की जड़ जमा देती है। शुभकर्म फल को रसहीन कर देती है। अच्छे मन को मलिन करती है। हृदय को कठोर बनाती है। प्राणियों का घात करती है। वाणी को असत्य की ओर ले जाती है। महान् गुणों का भी निरादर करती है। यशरूपी धन को नष्ट करती है। दूसरों को दोष लगाती है। महापुरुषों के भी गुणों को ढाँकती है, मित्रता की जड़ खोदती है। किये हुए भी उपकार को भुलाती है। महान् नरक के गड्ढे में गिराती है। दुःखों के भँवर में फँसाती है। इस प्रकार कषाय अनर्थ करती है। ऐसी भावना से कषाय को शांत करना चाहिए।

जो मनुष्य लोभ मोह के वश होकर श्रीजिनेन्द्र भगवान् की पूजा के निमित्त दान किये हुए द्रव्य का अपहरण कर पूजादि धार्मिक कार्यों में अंतराय डालता है, विघ्न करता है, पुण्योत्पादक कार्य का विध्वंस करता है वह क्षय, कोढ़, लूल, जलोदर, भगंदर, गलकुष्टि, वात, पित्त कफ और सन्निपात आदि रोगों की तीव्र वेदना को प्राप्त होता है।

भावार्थः- जिनशासन और धर्मायतनों का उद्योत करने के लिए, धर्म को बढ़ाने के लिए धर्म प्रभावना के लिए, धर्म शास्त्र प्रकाशन के लिए, महापूजा, विधिविधान, पंचकल्याणक आदि धर्म कार्यों में विघ्न डालता है, अंतराय करता है, दान देने वाले को रोकता है। ऐसे ऐसे कार्यों को करने नहीं देता है। रोडा अटकाता है। छत्र चमर, पैसा आदि लोप करता है। मंदिर के द्रव्य से आजीविका चलाता है। धर्मकार्यों को बंद करता है। ऐसा व्यक्ति अंतराय कर्म को बांधता है। और तीव्र दुःखों को प्राप्त होता है।

वंदना और स्वाध्याय आदि धर्म कार्यों में विघ्न डालने का फल

णरइतिरियाइदुगइदारिद्दवियलंगहाणिदुक्खाणि।
देवगुरुसत्थवन्दणसुयभेयज्झादाणविघणफलं।।

अर्थः-जो मनुष्य देव, गुरु, शास्त्र के उद्धार, वंदना और पूजा, प्रतिष्ठा आदि के निमित्त होने वाले दान में अथवा प्रदान किये हुए दान में श्रुत की वृद्धि, पाठशाला, विद्यालय और स्वाध्याय आदि के लिए दान में विघ्न करता है, देने नहीं देता, रूकावट डालता है, उसको नरक, तिर्यंच आदि दुर्गति के दुःख और मनुष्य गति में दरिद्रता, विकलांग तथा विविध प्रकार के कष्ट प्राप्त होते हैं।

पंचमकाल में विशुद्धि की हीनता (काल प्रभाव)

सम्मविसोही तवगुण चारित्त सण्णाण दाण परिहीणं।
भरहे दुस्समकाले मणुयाणं जायदे णियदं।।

भावार्थः-भरत क्षेत्र में पंचमकाल में अट्ठाईस मूलगुण धारक तप व्रत और सम्यक् चारित्र सम्यक् ज्ञान और दान में हीनता होती है अर्थात् पायी जाती है।

पापसम पुण्य व मोक्षप्रद पुण्य

(पापानुबन्धी पुण्य से परे मैं आत्मोपलब्धि हेतुक पुण्य करूँ।)
(धन-नाम-मानादि हेतु किया गया पुण्य संसार भ्रमण के कारण अतः यह पुण्य पाप के सम त्यजनीय है)
(चाल : मन रे! तू काहे....सायोनारा....)

जिया रे! तू सातिशय पुण्य करो!
पापानुबन्धी पुण्य से परे...पुण्यानुबन्धी पुण्य करो ऽऽऽ (ध्रुव)
सम्यग्दृष्टेः पुण्यं न भवति संसारकारणं नियमात्।
मोक्षस्य भवति हेतुः यदि च निदानं न स करोति।।(भावसंग्रह 404)
अकृत निदान सम्यग्दृष्टिः पुण्यं कृत्वा ज्ञानचरणस्यः।
उत्पद्यते दिविलोके शुभपरिणामः सुलेश्योऽपि।।(405)
निदान रहित व श्रद्धा-प्रज्ञा युक्त...करो तू शुभपरिणाम ऽऽऽ
शुभलेश्यायुक्त आर्त्त-रौद्र मुक्त...करो तू ध्यान व अध्ययन ऽऽऽ
ख्याति-पूजा-लाभ से शून्य ऽऽऽ (जिया) (1)
अन्यथा तेरे सभी धार्मिक कार्य...तप त्याग व ध्यान-अध्ययन ऽऽऽ
होंगे पापानुबन्धी पुण्य... जो होते हैं संसार कारण ऽऽऽ
भले मिले कुदेवादि में जन्म ऽऽऽ (जिया) (2)
धन के हेतु या प्रसिद्धि हेतु...अथवा भोगोपभोग निमित्त ऽऽऽ
इहलोक/(या) परलोक हेतु निदान...सभी से होता आत्मपतन ऽऽऽ
न मिले उत्तम देव में भी जन्म ऽऽऽ (जिया) (3)
जिस कार्य में ऐसा होता है निदान...उस से भी रहो तू माध्यस्थ ऽऽऽ
अन्यथा पाप बंध तुझे भी होगा...नवकोटि से होता पाप बन्ध ऽऽऽ
अनावश्यक न करो पापबन्ध ऽऽऽ (जिया) (4)
पंचम/(कलि) काल में प्रायः धार्मिक काम...पूजा-आराधना-विधान-प्रतिष्ठा ऽऽऽ
तीर्थयात्रा से ले प्रवचन-वर्षायोग...सभी में होती धन-नाम की कामना ऽऽऽ
ये तो साक्षात् निदान की भावना ऽऽऽ (जिया) (5)
तुझे न चाहिए धन-नाम-निर्माण...ढोंग-पाखण्ड व आडम्बर ऽऽऽ
माईक मंच व पत्रिका होर्डिंग...गाजे-बाजे व भीड़-प्रदर्शन ऽऽऽ
तुझे चाहिए समता-शान्ति-ध्यान ऽऽऽ (जिया) (6)

अन्धानुकरण (पर) प्रतिस्पर्द्धा त्यज...अन्य से न करो स्व-मूल्यांकन ऽऽऽ
तेरा मूल्यांकन स्व-आत्मवैभव से करो...तुझ में अनन्त ज्ञान-सुख-वीर्य ऽऽऽ
'कनक' तू स्व-वैभव हेतु करो पुण्य ऽऽऽ (जिया) (7)

ओबरी 17/01/2018 रात्रि 07.56

(यह कविता आर्यिका सुवत्सलमती माताजी के कारण भी बनी।)

इंसान की भावनाएं बदलने के साथ शरीर में रक्त संचार की प्रकिया भी बदलती

गुस्से से चेहरा लाल हो जाना, डर से पीला पड़ जाना। ये सब कहावतों में तो अक्सर सुना जाता है, लेकिन अब तक ये साबित नहीं हुआ था कि ऐसा क्यों होता है। दरअसल इंसान की भावनाएं बदलने के साथ-साथ उनके शरीर में रक्त संचार की प्रकिया भी बदलती रहती है। इस बदलाव का ही असर चेहरे का रंग कुछ बदला हुआ लगता है। ये बात अमेरिका के ओहियो यूनिवर्सिटी के शोधकर्त्ताओं ने इसी विषय पर शोध किया था कि अलग-अलग भावनाओं में लोगों के चेहरे का रंग क्यों बदल जाता है। साथ ही इस पर भी अध्ययन किया गया कि क्या चेहरे के रंगो के आधार पर किसी व्यक्ति की भावनाओं को पहचाना जा सकता है। नतीजा निकला कि-आमतौर पर अलग-अलग भावनाओं में व्यक्ति की नाक, आईब्रो और गाल के रंग में बदलाव आता है। 75 प्रतिशत मामलों में चेहरे का ये बदलता रंग देखकर किसी व्यक्ति की भावनाओं को समझा जा सकता है।

शोध टीम को लीड करने वाले डॉक्टर एलेक्स मार्टीन्ज बताते है कि-'इंसान के चेहरे के बदलते एक्सप्रेशन और बदलते रंग का संबंध सेंट्रल नर्वस सिस्टम मे होता है। हमने शोध में इसी सिस्टम को समझने की दिशा में काम किया। जब इंसान में अलग-अलग भावनाएं पैदा होती है, तो इसका पहला असर उसके शरीर में दौड़ने वाली खून पर पड़ता है। ये असर ज्यादा खुशी या ज्यादा दुख, डर, गुस्से जैसे भावनाओं में दिखता है। ऐसे में सेंट्रल नर्वस शरीर को संकेत देता है। ये संकेत पाकर खून के दौड़ने' का रफ्तार और खून की संरचना में भावनाओं के मुताबिक फर्क आता है। यही फर्क चेहरे के बदलते रंग के रूप में दिखता है। खास बात ये है कि ये पूरी प्रकिया हर जेंडर और हर उम्र के व्यक्ति के लिए एक जैसी ही रहती है।

ओहियो यूनिवर्सिटी की टीम का कहना है कि इस पूरी प्रकिया को समझ लिया जाए, तो किसी भी इंसान का चेहरा देखकर उसकी भावनाओं को समझा जा सकता है। सेंट्रल नर्वस सिस्टम के इस कार्यप्रणाली को समझकर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस से जुड़े अध्ययन में भी इसका इस्तेमाल किया जा सकता है।

चेहरे का रंग देख भावनाएं बताने वाले कम्प्यूटर पर काम जारी

ओहियो यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक ऐसा कम्प्यूटर प्रोगाम बनाने की दिशा में भी काम कर रहे है, जो इंसान के चेहरे का रंग देखकर उसकी भावनाएं बता सकेगा। अगर इंसान सास भी रोक ले, आँखे भी न झपकाए, तो भी ये प्रोगाम 90 प्रतिशत एक्यूरेसी के साथ भावनाएँ बता सकेगा। ओहियो यूनिवर्सिटी के शोधकर्त्ता इंसान की 18 अलग-अलग भावनाओं का सैंपल लेकर इस कम्प्यूटर प्रोगाम को तैयार करने की दिशा में काम किया जा रहा है।

आय बढ़ना ही खुशहाली का पैमाना नहीं

-भारत डोगरा

विश्व के अनेक विकसित देशों व तेज आर्थिक वृद्धि वाले विकासशील देशों में देखा गया है कि इसके साथ खुशहाली में अपेक्षित वृद्धि नहीं हुई। इसके उलट अनेक स्थानों पर तो मानसिक समस्या अधिक विकट हो गई। अमरीका में किशोरावस्था का अध्ययन करने वाले एक 36 सदस्यीय आयोग ने कहा कि 10 में से एक किशोर 5 में से एक किशोरी आत्महत्या का कम से कम एक प्रयास कर चुके हैं।

आस्ट्रेलिया को काफी मौज-मस्ती का देश समझा जाता है। यहां के पुरुषों में भी आत्महत्या की दर बहुत अधिक है। यूके में टूटने वाले विवाहों की संख्या वर्ष 1955-88 के दौरान छह गुणा बढ़ गई। चीन में सबसे तेज आर्थिक वृद्धि हुई है, पर यहां भी अवसाद बहुत बढ़ा है। विश्व बैंक, विश्व स्वास्थ्य संगठन व हारवर्ड विश्वविद्यालय के एक अध्ययन ने वर्ष 1997 में बताया कि जहां विश्व में आत्महत्या की दर 10.7 प्रति एक लाख जनसंख्या है, वहां चीन में यह 30.3 है। इस अध्ययन के अनुसार चीन में एक वर्ष में तीन लाख आत्महत्याएं होती है। यहां महिलाओं की आत्महत्या दर तो बहुत अधिक है। इस अध्ययन को मानें तो विश्व में महिलाओं की कुल आत्महत्याओं में से 55 प्रतिशत चीन की महिलाओं की होती है। ब्रिटिश अर्थव्यवस्था पर न्यू इकनामिक्स फाउंडेशन ने एक रिपोर्ट तैयार की है जिसमें बताया

गया है कि वर्ष 1950 के बाद सकल राष्ट्रीय उत्पाद 230 प्रतिशत बढ़ा पर टिकाऊ आर्थिक वेलफेयर में मात्र 3 प्रतिशत की वृद्धि हुई। ब्रिटिश समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद ने 5 वर्षों के दौरान 1500 व्यक्तियों को तीन बार संपर्क कर कुछ प्रश्न पूछे। इस सर्वेक्षण में अधिकांश लोगों का यह उत्तर मिला कि इस दौरान उपभोग बढ़ा पर जीवन की गुणवत्ता (क्वालिटी ऑफ लाइफ) में गिरावट हुई। इन सबसे यह स्पष्ट हो रहा है कि आय बढ़ जाने या आर्थिक संवृद्धि की दर बढ़ जाने से खुशहाली स्वतः नहीं आ जाती। इसके लिए ऐसे सतत् प्रयास की जरूरत है जो आर्थिक विकास को खुशहाली की ओर ले जाएं। खुशहाली के लिए उचित जीवन मूल्य, नैतिकता के मानदंड, सामाजिक व पारिवारिक संबंधों में प्रगाढ़ता और विभिन्न स्तरों पर समानता बहुत जरूरी है। जब इन बुनियादी मुद्दों पर ध्यान नहीं दिया जाता है तो अनेक स्तरों पर अकेलापन, अवसाद बढ़ सकते हैं। यह ऐसा सबक है जिसे तेजी से बदलते भारत को ध्यान में अवश्य रखना चाहिए।

उजाले की ओर

प्रतिभा ईश्वर प्रदत्त है, विनम्र रहिए। ख्याति समाज ने दी है अभारी रहें। घमंड खुद का दिया हुआ है, सतर्क रहिए। **-जॉन वुडन, बॉस्केटबॉल कोच**

प्रार्थना की क्षमता, आस्था, साहस, संतोष, प्रसन्नता, प्रेम और भलाई इन सारे गुणों के विकास की नींव है विनम्रता। **-जैम्स ई.फास्ट, पादरी**

घमंड देवदूतों को शैतान में बदल देता है, विनम्रता ही है जो मानव को देवदूत बना देती है। **- सेंट आगस्टीन**

विनम्रता के अभाव में पावर खतरनाक है। **-रिचर्ड डेली, राजनेता**

जिन्दगी विनम्रता का लंबा सबक है। **-जैम्स एम. बैरिएज, नाटककार**

ताने मारते रहने वाले व्यक्ति में श्रेष्ठ होने की ग्रंथि हो सकती है, जो केवल विनम्रता की ईमानदारी से ही ठीक हो सकती है। **-लॉरेंस लोवासिक, उपदेशक**

हमारी जिंदगी में प्रकृत्ति लाकर हम विनम्रता को आमांत्रित करते है।

-रिचर्ड लोव, पत्रकार

यदि दर्द और तकलीफें विनम्रता को जन्म नहीं देते तो फिर आपने अपने कष्टों को बर्बाद कर दिया है। **-कैटरीना क्लैमर, टेक्नोलॉजिस्ट**

विनम्रता असली चीज है, न कि आलसीपन का कोई अच्छा-सा आकर्षक नाम। **-सुज़न ग्लैसपेल, अभिनेत्री**

किसी चीज या दूसरे व्यक्ति पर पूरी एकाग्रता से खुद को लगा देना ही विनम्रता है। **-मेडलाइन ला एंगल , लेखिका**

विनम्रता और धैर्य, प्रेम में वृद्धि के सबसे पक्के सबूत हैं।

-जॉन वेसली, थियोलॉजियन

जो ईश्वर को जान लेते हैं वे विनम्र हो जाते हैं और जो खुद को जान लेते वे घमंडी नहीं हो सकते। **-जॉन फ्लैवल, बिशप**

गणधर से ले आचार्य स्व-शिष्यों के दोष बार-बार क्यों बताते है!

(चाल : आत्मशक्ति....)

''हित-मित-प्रिय कथन सत्य'' ऐसा आचार्य कहते/(लिखते) हैं।
तथापि आचार्य शिष्यों के लिए क्यों अधिक (अमित) कठोर (अप्रिय) कहते (लिखते) हैं।
''सद्वृत्तानां गुण गण कथा दोषवादे च मौनं'' भी कहते/(लिखते) हैं।
किन्तु स्व-शिष्यों के दोषों को बढ़ाकर क्यों बार-बार कहते हैं।
गणधर स्वामी कृत प्रतिक्रमण में तो दोषों का बारंबार कथन है।
पहले से लेकर अन्तिम तक दोषों का दशाधिक बार कथन करते है।
स्व-पर उपकारी गणधर से ले आचार्य तक पंचम काल में ऐसा करते हैं।
हुण्डावसर्पिणी घोर कलिकाल के कारण ऐसा ही विधान करते हैं।।
आदि तीर्थंकर काल के शिष्य सरल व अनभिज्ञ होते थे।
मध्य के बाविस तीर्थंकर काल के शिष्य सरल व प्राज्ञ होते थे।।
अन्तिम तीर्थंकर महावीर काल के शिष्य कुटिल व जड़ होते हैं।
अतएव उन्हें सुधार करने हेतु ऐसा विधान प्रयोग करते हैं।।
प्राज्ञ-सरल को समझाने हेतु यह विधान नहीं होता है,
स्व-प्रज्ञा व सरलता के कारण वे स्वयं को सुधार कर लेते थे।।
कलीकाल के शिष्यों के सुधार हेतु छेदोपस्थापना चारित्र है,
स्वनिन्दा-गर्हा-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान-प्रायश्चित का विधान है।।

यथा जीर्णरोग दूर करने हेतु बार-बार औषध सेवन विधेय है।
अनादि कालीन भवरोग दूर हेतु तथा स्वनिन्दादि बार-बार विधान है।
दिन में दो बार प्रतिक्रमण व प्रायश्चित करना अतएव अनिवार्य है।
दैवसिक-रात्रिक, पाक्षिक-चातुर्मासिक-उत्तमार्थ प्रतिक्रमण अनिवार्य है।।
दोष दूर हेतु दण्डकों का भी बार-बार प्रतिक्रमण अनिवार्य है।
एक बार के प्रतिक्रमण में एक ही दण्डक *दशाधिक* बार उच्चारण अनिवार्य है।
अनादि कालीन ज्ञानावरणादि (कर्म) के कारण, जीव बने हैं अल्पज्ञ व प्रमादी।
अतएव दोष भी होते बार-बार अतः उसे दूर करने हेतु बार-बार होती प्रवृत्ति।
यथा शरीर व वस्त्र गृहादि को किया जाता है बार-बार स्वच्छ-सलोना।
इससे भी अधिक आत्म शुद्धि हेतु प्रतिक्रमणादि होते अनेक विध।
ज्ञान-ध्यान व तप-त्याग आदि इस हेतु ही किये जाते हैं।
आगम-प्रायश्चित्त-मनोविज्ञान व अनुभव में 'कनक' सत्य पाते है।।(15)

सागवाडा-24-3-2018 मध्याह्न-12.30

(यह कविता डॉ.कैलाश जैन के कारण बनी)

संदर्भ-

आत्मज्ञान होने पर पूर्व अवस्था सम्बन्धी विषाद

(सम्यग्दृष्टि के प्रमुख गुण स्व निन्दा-गर्हा)

(अन्तरात्मा का बहिरात्मा-अवस्था सम्बन्धी विषाद)

मत्तश्चयुत्वेन्द्रियद्वारैः पतितो (यतितो) विषयेष्वहम्।
तान प्रपद्याऽहमिति माँ पुरा वेद न तत्त्वतः।।16 स. तं

पद्य भावानुवाद (चाल : आत्मशक्ति....)

इन्द्रिय विषयों में आसक्त होकर, बना था पूर्व में बहिरात्मा।
जिससे मैं स्व-स्वरूप से च्युत हुआ था ऐसा मैं था दुरात्मा।।(1)

समीक्षाः-

बहिरात्मा को जब होता है आत्म ज्ञान तब होता उसे पश्चात्ताप।
स्व को धिक्कार करता हाय! मैं कैसे था आत्म हन्तारा।।(2)

स्वयं के अनन्त ज्ञानानन्द त्यागकर, विषय भोगों में मस्त रहा।
तन-मन-इन्द्रिय व सत्ता-सम्पत्ति में अहंकार-ममकार किया।।(3)

अमृत त्यागकर विषपान कर, स्वयं को मैं धन्य-धन्य माना।
इस हेतु क्रोध मान माया लोभ किया, हित अहित को नहीं जाना।।(4)

इसके कारण विविध अन्याय-अत्याचार से ले शोषण-मिलावट किया।
पक्षपात व वैर-विरोध से ले, आक्रमण-युद्ध-हत्या तक किया।।(5)

तथापि मैं अज्ञानी मोही स्वार्थी, इससे मैं स्वयं को श्रेष्ठ माना।
अन्य जीवों को निकृष्ट मानकर, उनका अनादर से ले अपघात किया।।(6)

अभी मैं स्व-आत्मज्ञान से स्व-स्वरूप का अनुभव किया।
इस अनुभव के कारण पूर्व कृत्यों को मैं कुकृत्य रूप में जाना।।(7)

इस हेतु मैं निन्दा गर्हापूर्वक आलोचना-प्रतिक्रमण-पश्चात्ताप करूँ।
प्रायश्चित से ले प्रत्याख्यान करके, स्वयं को मैं शुद्ध बुद्ध करूँ।।(8)

ऐसी परिणति से ही मिथ्या दृष्टि पापी बनते सम्यग्दृष्टि पावन।
यह है आत्म विकास उपाय तीनों काल में ऐसे ही बनते पावन।।(9)

सम्यग्दृष्टि के प्रमुख अष्ट गुणों में से निंदा गर्हा हैं प्रमुख दो गुण।
स्व दोषों की स्वयं निंदा करता गुरुसाक्षी से करे आलोचना रूपी गर्हा।।(10)

पर निन्दा पर आलोचना न करता, करता है उपगूहन व स्थितिकरण।
'गुण गुण कथा दोष वादे च मौन', होता सम्यग्दृष्टि का प्रमुख गुण।।(11)

देहात्म बुद्धि रूपी भ्रान्ति-कारण व निवारणोपाय

जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं विविक्तं भावयन्नपि।
पूर्वविभ्रमसंस्काराद् भ्रांति भूयोऽपि गच्छति।।45।
अचेतनमिदं दृश्यमदृश्यं चेतनं ततः।
क्व रुष्यामि क्व तुष्यामि मध्यस्थोऽहं भवाम्यतः।।46

पद्यभावानुवाद - (चाल : आत्मशक्ति....)

आत्मतत्त्व को जानने पर व अन्य से भिन्न मानने/(भाने) पर भी।
पूर्व विभ्रम संस्कार के कारण, पुनरपि देहात्म बुद्धि हो जाती।। (45)

इस भ्रान्ति के निवारण हेतु, अन्तरात्मा करता भेद विज्ञान।
दृश्यमान जड़ व अदृश्यमान चेतन है अतः मैं क्यों करूँ राग द्वेष।।46

आत्मदर्शी व अनात्मदर्शी के लक्षण व फल

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनो जलम्।
स पश्यात्यात्मनस्तत्त्वं स तत्त्वं नेतरो जनः।।(85)

पद्यभावानुवाद - (चाल : आत्मशक्ति....)

राग-द्वेषादि की कलोल से, जिसका मनजल न होता है चंचल।
वे करते आत्मदर्शन अन्यजनों को न होता है आत्मदर्शन।।

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।
धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रयेत्ततः।।(36)

पद्यभावानुवाद - (चाल : आत्मशक्ति...)

आत्मदर्शन होता अविक्षिप्त मन, विक्षिप्त मन है आत्मभ्रान्ति।
अतएव अविक्षिप्त मन धारणीय, अधारणीय विक्षिप्त मति।।

अविद्याभ्याससंस्कारैवशं क्षिप्यते मनः।
तदेव ज्ञानसंस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते।।(37)

पद्यभावानुवाद - (चाल : आत्मशक्ति....)

अविद्या अभ्यास संस्कार के कारण, होता है विक्षिप्त मन।
वह ही ज्ञान संस्कार के कारण, आत्मतत्त्व में स्थित होता मन।।

अपमानादयस्तस्य विक्षेपो गस्य चेतसः।
नापमानादयस्तस्य न क्षेपो यस्य चेतसः।।(38)

पद्यभावानुवाद - (चाल : आत्मशक्ति....)

विक्षिप्त मनवाले ही अपमान आदि अनुभव करते।
अविक्षिप्त मनवाले अपमान आदि अनुभव न करते।।

यदा मोहत्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।
तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात्।। (39)

पद्यभावानुवाद - (चाल : आत्मशक्ति. ..)

राग-द्वेष जब उत्पन्न होते, मोहोदय से कोई तपस्वी को।
उसी समय ही स्व-शुद्धात्मा स्वरूप की, भावना से उपशम क्षणभर में।।

यत्र काये मुनेः प्रेम ततः प्रच्याव्य देहिनम्।
बुद्धया तदुत्तमे काये योजयेत्प्रेम नश्यति।। (40)

पद्यभावानुवाद - (चाल : आत्मशक्ति...)

स्व-शरीर में जब होता है राग, मुनि करे भेदज्ञान से पृथक्।
जिससे देहात्मबुद्धि नाश होकर, आत्म स्वरूप में होगा संयोग।।

आत्मविभ्रमजं दुःखमात्मज्ञानात्प्रशाम्यति।
नाऽयतास्तत्र निर्वान्ति कृत्वापि परमं तपः।।(41)

पद्यभावानुवाद - (चाल : आत्मशक्ति...)

देहात्मबुद्धि से उत्पन्न दुःख, आत्मज्ञान से होता उपशमन।
आत्मज्ञान बिना न होता दुःख नाश, करने पर भी घोर तप।।

शुभं शरीरं दिव्यांश्च विषयानभिवाञ्छति।
उत्पन्ननाऽऽत्ममतिर्देहे तत्त्वज्ञानी ततश्च्युतिम्।। (42)

पद्यभावानुवाद - (चाल : आत्मशक्ति....)

देहात्मबुद्धि वाला तो शुभ शरीर व भोगोपभोग को चाहता है।
देहात्मबुद्धि रहित वाले देह से रिक्त मोक्ष सुख चाहते हैं।।

परत्राहम्मतिः स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यसंशयम्।
स्वस्मिन्नहम्मतिच्युत्वा परस्मान्मुच्यते बुधः।। (43)

पद्यभावानुवाद - (चाल : आत्मशक्ति....)

परमें आसक्त मोही जीव स्व से च्युत होकर निःसंदेह बन्धता है।
स्व-आत्मा में ही आत्मा मानने वाले, अन्य से च्युत होकर मोक्ष पाते हैं।।

दृश्यमानमिदं मूढस्त्रिलिङ्गभवबुध्यते।
इदमित्यवबुद्धस्तु निष्पन्नं शब्दवर्जितम्।। (44)

पद्यभावानुवाद - (चाल : आत्मशक्ति...)

दृश्यमान/(देहादि) को मूढ़ स्त्री-पुरुष-नपुंसक लिंग रूप से मानता है।
भेदविज्ञानी अन्तरात्मा/(आत्मा को) लिंगातीत व स्वयंभू-निर्विकल्प मानते हैं।

हितोपदेशी तथा श्रोता

(ज्ञान प्राप्ति के विभिन्न उपाय-हितोपदेश)

महान् ज्ञान को प्राप्त करने के योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से युक्त शिष्य एवं गुरु की आवश्यकता अनिवार्य है। क्योंकि शिष्य एवं गुरु के अन्तरंङ्ग तथा बहिरङ्ग सम्पूर्ण कारणों के सम्यक् समवाय से ही ऐसा महान् बोधि लाभ सम्भव है। यथा-

सर्व दुःख नाशकारी शिक्षा-

दुःखद्विभेषि नितरामभिवाञ्छसि सुखमतोऽहमप्यात्मन्।
दुःखापहारि सुखकरमनुशास्मि तवानुमतमेव।।2 आत्मानु

हे आत्मन्! तू दुःख से अत्यन्त डरता है और सुख की इच्छा करता है, इसलिए मैं भी तेरे लिए अभीष्ट उसी तत्त्व का प्रतिपादन करता हूँ जो कि तेरे दुःख को नष्ट करके सुख को करने वाला है।

यद्यपि कदाचिदस्मिन् विपाकमधुरं तदात्वकटु किंचित्।
त्वं तस्मान्मा भैषीर्यथातुरो भेषजादुग्रात्।।3

यद्यपि इस (आत्मानुशासन) में प्रतिपादित किया जाने वाला कुछ सम्यग्दर्शनादि का उपदेश कदाचित् सुनने में अथवा आचरण के समय में थोड़ा सा कडुआ (दुःख दायक) प्रतीत हो सकता है, तो भी वह परिणाम में मधुर (हितकर) ही होगा। इसलिए हे आत्मन्! जिस प्रकार रोगी तीक्ष्ण (कडुवी) औषधि से नहीं डरता है उसी प्रकार तू भी उससे डरना नहीं।

जिस प्रकार ज्वर आदि से पीड़ित बुद्धिमान् मनुष्य उसको नष्ट करने के लिए चिरायता आदि कडुवी भी औषधि को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करता है उसी प्रकार संसार के दुःख से पीड़ित भव्य जीवों को इस उपदेश को सुनकर प्रसन्नतापूर्वक तदनुसार आचरण करना चाहिए। कारण यह कि यद्यपि आचरण के समय वह कुछ कष्टकारक अवश्य दिखेगा तो भी उसका फल मधुर (मोक्षप्राप्ति) होगा।

हितोपदेशी दुर्लभ-

जना घनाश्च वाचालाः सुलभाः स्युर्वुयात्थिताः।
दुर्लभा ह्यन्तराद्रास्ते जगदभ्युज्जिहीर्षवः।।(4)

जिसका उत्थान (उत्पत्ति एवं प्रयत्न) व्यर्थ है ऐसे वाचाल मनुष्य और मेघ दोनों ही सरलता से प्राप्त होते हैं। किन्तु जो भीतर से आर्द्र (दयालु और जल से पूर्ण) होकर जगत् का उद्धार करना चाहते हैं ऐसे वे मनुष्य और मेघ दोनों दुर्लभ हैं।

विशेषार्थ- जो मेघ गरजते तो हैं, किन्तु जलहीन होने से बरसते नहीं हैं, वे सरलता से पाये जाते हैं। परन्तु जो जल से परिपूर्ण होकर वर्षा करने के उन्मुख हैं, वे दुर्लभ ही होते हैं। ठीक इसी प्रकार से जो उपदेशक अर्थहीन अथवा अनर्थकारी उपदेश करते हैं वे तो अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं, किन्तु जो स्वयं मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होकर दयार्द्रचित्त होते हुए अन्य उन्मार्गगामी प्राणियों को उससे उद्धार करने वाले

सदुपदेश करते हैं वे कठिनता से ही प्राप्त होते हैं। ऐसे ही उपदेशक का प्रयत्न सफल होता है।

हितोपदेशी का स्वरूप-

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः।
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभु परमनोहारी परानिन्दया।
बुयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः (5)

जो त्रिकालवर्ती पदार्थों को विषय करने वाली प्रज्ञा से सहित हैं, समस्त शास्त्रों के रहस्य को जान चुके हैं, लोक व्यवहार से परिचित हैं, अर्थ-लाभ और पूजा-प्रतिष्ठा आदि की इच्छा से रहित है, नवीन-नवीन कल्पना की शक्तिरूप अथवा शीघ्र उत्तर देने की योग्यतारूप उत्कृष्ट प्रतिभा से सम्पन्न है, शांत है, प्रश्न करने से पूर्व में ही वैसे प्रश्न के उपस्थिति होने की संभावना से उसके उत्तर को देख चुका है, प्रायः अनेक प्रकार के प्रश्नों के उपस्थित होने पर उनको सहन करने वाला है अर्थात् न तो घबराता है और न उत्तेजित ही होता है, श्रोताओं पर प्रभाव डालने वाला है, उनके (श्रोताओं के) मन को आकर्षित करने वाला अथवा उनके मनोगत भाव को जानने वाला है, तथा उत्तमोत्तम अनेक गुणों का स्थानभूत है, ऐसा संघ का स्वामी आचार्य दूसरों की निन्दा न करके स्पष्ट एवं मधुर शब्दों में धर्मोपदेश देने का अधिकारी होता है।

सच्चे गुरु -

श्रुतमविकलं शुद्धाः वृत्तिः परप्रतिबोधने
परिणतिरूरूद्योगोमार्ग प्रवर्तनसद्धिधो।
बुधनुतिरनुत्सेको लोकज्ञतामृदुताऽस्पृहा
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्येचसोऽस्तुगुरुः सताम्।।

जिसके परिपूर्ण श्रुत है अर्थात् जो समस्त सिद्धान्त का जानकार है, जिसका चारित्र अथवा मन, वचन व कार्य की प्रवृत्ति पवित्र है, जो दूसरों को प्रतिबोधित करने में प्रवीण है, मोक्षमार्ग के प्रचार रूप समीचीन कार्य में अतिशय प्रयत्नशील है, जिसकी अन्य विद्वान् स्तुति करते हैं, तथा जो स्वयं भी विशिष्ट विद्वानों की प्रशंसा एवं उन्हें नमस्कारादि करता है, जो अभिमान से रहित है, लोक और लोकमर्यादा का जानकार है, सरल परिणामी है, इस लोक सम्बन्धी इच्छाओं से रहित है, तथा जिसमें और भी

आचार्य पद के योग्य गुण विद्यमान है, वही हेयापादेय-विवेक ज्ञान के अभिलाषी शिष्यों का गुरु हो सकता है।

सच्चे शिष्य-

भव्यः किं कुशलं ममेति विमृशन् दुःखाद् भृशं भीतवान्।
सौख्यैषीश्रवणादिबुद्धिविभवः श्रुत्वा विचार्यस्फुटम्।

धर्म शर्मकरं दयागुणमयं युक्त्यागमाभ्यां स्थितं,
गृहन् धर्मकथां श्रुतावधिकृतः शास्यो निरस्ताग्रहः।। 7

जो भव्य है; मेरे लिए हितकारक मार्ग कौनसा है, इसका विचार करने वाला है, दुःख से अत्यन्त डरा हुआ है, यथार्थ सुख का अभिलाषी है, श्रवण आदि रूप बुद्धि वैभव से सम्पन्न हैं, तथा उपदेश को सुखकारक और उसके विषय में स्पष्टता से विचार करके जो युक्ति व आगम से सिद्ध है ऐसे सुखकारक दयामय धर्म को ग्रहण करने वाला है, ऐसा दुराग्रह से रहित शिष्य धर्मकथा के सुनने में अधिकारी माना गया है।

यहाँ धर्मोपदेश के सुनने का अधिकारी कौन है, इस प्रकार श्रोता के गुणों का विचार करते हुए सबसे पहले यह बतलाया है कि भव्य होना चाहिए। जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र को प्राप्त करके भविष्य में अनंत चतुष्टय स्वरूप से परिणत होने वाला है वह भव्य कहलाता है। यदि श्रोता इस प्रकार का भव्य नहीं है तो उसे उपदेश देना व्यर्थ ही होगा। कारण कि जिस प्रकार पानी के सींचने से ही मिट्टी गीलेपन को प्राप्त हो सकती है उसी प्रकार पत्थर नहीं हो सकता, अथवा जिस प्रकार नवीन घट के ऊपर जल बिन्दुओं के डालने पर वह उन्हें आत्मसात् कर लेता है उस प्रकार घी आदि से चिक्कणता को प्राप्त हुआ घट उन्हें आत्मसात नहीं कर सकता है- वे इधर-उधर बिखरकर नीचे गिर जाती हैं। ठीक यही स्थिति उस श्रोता की भी है- जिस श्रोता का हृदय सरल है वह सदुपदेश को ग्रहण करके तद्नुसार प्रवृत्ति करने में प्रयत्नशील होता है, किन्तु जिसका हृदय कठोर है उसके ऊपर सदुपयोग का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। अतएव सबसे पहले उसका भव्य होना आवश्यक है। दूसरी विशेषता उसकी यह निर्दिष्ट की गई है कि उसे हिताहित का विवेक होना चाहिए। कारण कि मेरा आत्मकल्याण किस प्रकार से हो सकता है, यह विचार यदि श्रोता के रहता है तब तो वह सदुपदेश को सुनकर तद्नुसार कल्याण मार्ग में चलने के लिए

उद्यत हो सकता है। परन्तु यदि उसे आत्महित की चिन्ता अथवा हित और अहित का विवेक नहीं है तो मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त नहीं हो सकेगा। किन्तु जब और जिस प्रकार का प्रतिकूल उपदेश उसे प्राप्त होगा तद्नुसार वह अस्थिर से आचरण करता रहेगा। इस प्रकार से वह दुःखी ही बना रहेगा। इसलिए उसमें आत्महित का विचार और उसके परीक्षण की योग्यता अवश्य होना चाहिए। इसी प्रकार उसे दुःख का भय और सुख की अभिलाषा होनी चाहिए, अन्यथा यदि उसे दुःख से किसी प्रकार का भय नहीं है या सुख की अभिलाषा नहीं है तो फिर भला वह दुःख को दूर करने वाले सुख के मार्ग में प्रवृत्त ही क्यों होगा? नहीं होगा। अतएव उसे दुःख से भयभीत और सुखाभिलाषी भी अवश्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसमें निम्न प्रकार बुद्धि का वैभाव या श्रोता के आठ गुण भी होना चाहिए -

शुश्रुषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
स्मृत्यूहापोहनिर्णीतिः श्रोतुरष्टौ गुणान् विदुः।।

सबसे पहले उसे उपदेश सुनने की उत्कंठा (शुश्रुषा) होनी चाहिए, अन्यथा तद्नुसार आचरण करना तो दूर रहा किन्तु वह उसे रूचिपूर्वक सुनेगा भी नहीं। अथवा शुश्रुषा से अभिप्राय गुरु की सेवा का भी हो सकता है, क्योंकि वह भी ज्ञान प्राप्ति का साधन है। इसके अनन्तर श्रवण (सुनना), सुने हुए अर्थ को ग्रहण करना (रखना) उसके योग्यायोग्य का युक्तिपूर्वक विचार करना, इस विचार से जो योग्य प्रमाणित हो उसे ग्रहण करके अयोग्य अर्थ को छोड़ना, तथा योग्य तत्त्व के विषय में दृढ़ता से रहना, ये श्रोता के आठ गुण है जो उसमें होने चाहिए। उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त श्रोता में हठाग्रह का अभाव भी होना चाहिए, क्योंकि वह यदि हठाग्रही है तो वह यथावत् वस्तु का स्वरूप का विचार नहीं कर सकेगा। कहा भी है-

आग्रहीवत् निनीषति युक्ति तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा।
पक्षपातरहितस्य तु युक्तिर्यत्र तत्र मतिरेति निवेशम्।।

अर्थात् दुराग्रही मनुष्य ने जो पक्ष निश्चित कर रखा है वह युक्ति को उसी ओर ले जाना चाहेगा। किन्तु जो आग्रह से रहित होकर निष्पक्ष दृष्टि से विचार करना चाहता है वह युक्ति का अनुसरण करके उसके ऊपर विचार करता और तद्नुसार वस्तु-स्वरूप का निश्चय करता है। इस प्रकार जिस श्रोता में ये गुण विद्यमान होंगे वह सरूचिपूर्वक धर्मोपदेश को सुन करके तदनुसार आत्महित के मार्ग में अवश्य प्रवृत्त होगा।

गुरु के कठोर वचन भी हितकारी-

विकाशयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशवः।

रवेरिवारविन्दस्य कठोराश्च गुरुक्तयः।।(142)-(आत्मानुशासन)

जिस प्रकार सूर्य की किरणें भी कमल को प्रफुल्लित करती है उसी प्रकार गुरु की कठोर वाणी भी भव्य जीव के मन को प्रफुल्लित करती है।

श्रीगुरु दोष छुड़ाने और गुण-ग्रहण कराने के लिए कदाचित् असुहावने कठोर वचन भी कहे तो भी भव्य जीव का मन उन वचनों को सुनकर प्रसन्न ही होता है, उसे चिन्ता या खेद नहीं होता। जिन प्रकार सूर्य की किरणें यद्यपि औरों को आताप उत्पन्न करने वाली उग्र और कठोर होती है, तथापि वे कमल की कली को प्रफुल्लित ही करती है, उसी प्रकार गुरु के वचन पापियों को स्वयं हीन होने के कारण यद्यपि दुःख उत्पन्न करने वाले कठोर होते हैं, तथापि वे धर्मात्मा के मन को आनंद ही उत्पन्न करते हैं। धर्मात्मा जीवों को श्रीगुरु जब दबाकर (अत्यन्त कठोरता के साथ) उपदेश देते हैं, तब वे अपने को धन्य मानते हैं।

प्रश्न-कठोर उपदेश से पापियों को तो दुःख ही होगा?

उत्तर-श्रीगुरु जिसे पापी या तीव्र कषायी समझते हैं, उसे कठोर उपदेश नहीं देते, वहाँ माध्यस्थ भाव रखते हैं।

यहाँ तो आचार्य शिष्य को शिक्षा देते हैं कि श्रीगुरु तेरा भला करने के लिए कठोर वचन कहते हैं, उन्हें तुझसे ईर्ष्या का प्रयोजन नहीं है, अतः उन्हें इष्ट जानकर उनका आदर ही करना चाहिए।

धर्मात्माओं की दुर्लभता-

लोकद्वयहितं वक्तुं श्रोतुं च सुलभाःपुरा।

दुर्लभाः कर्तुमद्यत्वे वक्तुं श्रोतुं च दुर्लभाः।। (143)

पूर्व काल में दोनों लोकों में हितकारी धर्म को कहने और सुनने वाले सुलभ थे, किन्तु करने वाले दुर्लभ थे, किन्तु इस काल में तो कहने और सुनने वाले भी दुर्लभ हो गये हैं।

इस लोक और परलोक में जीव का हित करने वाले धर्म को कहने वाले और सुनने वाले पहले चतुर्थ काल में बहुत होते थे, परन्तु अंगीकार करने वाले तो उस समय भी थोड़े ही थे, क्योंकि संसार में धर्मात्मा थोड़े ही होते हैं।

लेकिन अब यह पंचम काल ऐसा निकृष्ट है कि इसमें सच्चे धर्म को कहने

वाले तो अपने लोभ और मान के अभिलाषी हो गये हैं, इसलिए वे यथार्थ नहीं कहते तथा सुनने वाले जड़ और वक्र हो गये हैं, इसलिए वे परीक्षा-रहित, हठग्राही होने से यथार्थ बात नहीं सुनते। जब कहना सुनना ही दुर्लभ हो गया तो अंगीकार करने की बात ही क्या करना?

इस प्रकार इस काल में धर्म दुर्लभ हो गया है, सो ठीक ही है क्योंकि यह पंचम काल ऐसा निकृष्ट है कि जिसमें सभी उत्तम वस्तुएँ अल्प होती जाती हैं और धर्म भी तो उत्तम है, अतः उसकी वृद्धि कैसे हो सकती है? इसलिए इस निकृष्ट काल में जिन्हें धर्म की प्राप्ति होती है, वे ही धन्य हैं।

तीन बंदर की मूर्तियाँ ही नहीं; चार चाहिए

तीन बंदर की मूर्तियाँ- (1) बुरा नहीं देखना, (2) बुरा नहीं सुनना, (3) बुरा नहीं बोलना के प्रतीक स्वरूप क्रमशः हाथों से दोनों आँख दोनों कान एवं मुख को बंद करती हुई बंदर की 3 मूर्तियाँ पर्याप्त नहीं है। इसके साथ-साथ बुरा नहीं सोचने के भाव के प्रतीक स्वरूप छाती में हाथ रखती हुई चौथी बंदर की मूर्ति की भी नितान्त अनिवार्यता है। क्योंकि यदि कोई अंधा-बधिर-मुक भी है परन्तु बुरा सोच रहा है तो वह बुरा ही है परन्तु वीतराग सर्वज्ञ भगवान् सब कुछ देखने-सुनने पर भी तथा 718 भाषा में बोलने पर भी बुरा नहीं है। अच्छा-बुरा का उद्गमस्रोत विचार ही है। विचार के अनुसार ही उच्चारण-श्रवण-दर्शन-आचरण होता है। अच्छा विचार (सुधार करने के लिए, हित करने के लिए) से यदि दूसरों के बुरे गुणों के बारे में कोई सोच-विचार कर रहा है, बुरे वचनों को सुन रहा है, बुरे कामों को देख रहा है और हितकर कटु (बुरा) बोल रहा है तो भी वह बुरा नहीं है। अपितु ऐसे परोपकारी, हितोपदेशी, सज्जन, गुणीजन, गुरुजन उनसे श्रेष्ठ हैं जो दूसरों के हित के लिए दिल-दिमाग-आँख-कान-मुँह बंद रखते हैं। दुर्जन, पर अहितकारी लोगों के लिए यह 3, तीन मूर्तियाँ सही है। क्योंकि वे गंदगी की मक्खी, मच्छर, खटमल के जैसे केवल दूसरों को क्षति पहुँचाने के लिए ही दूसरों के बुरा देखते हैं, बुरा सुनते हैं, बुरा बोलते हैं।

न बिना परिवादेन रमते दुर्जनो जनः।

काकः सर्वरसान् भुक्त्वा बिना मेघ्यं न तृप्यति।।382।। स.कौ.

दुष्ट मनुष्य को निन्दा किये बिना चैन नहीं पड़ती क्योंकि कौआ समस्त रसों को छोड़कर अशुचि पदार्थ के बिना संतुष्ट नहीं होता।

खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति।

आत्मनो विल्व मात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति।।383।। स. कौ.

दुष्ट पुरुष, दूसरों के सरसों बराबर दोषों को देखता है और अपने बेल के बराबर दोषों को देखता हुआ भी नहीं देखता है।

सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात्क्रूरतरः खलः।

मन्त्रेण शाम्यते सर्पः खलः केनोपशाम्यते।।384।।

सर्प क्रूर है और दुर्जन भी क्रूर है परन्तु दुर्जन सर्प की अपेक्षा अधिक क्रूर है क्योंकि सर्प तो मंत्र से शांत हो जाता है परन्तु दुर्जन किससे शांत होता है? अर्थात् किसी से नहीं।

अतिमालिने कर्त्तव्ये भवति खलानामतीव निपुणा धीः।

तिमिरे हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते दृष्टिः।।504।।

अत्यन्त मलिन कार्य के करने में दुर्जनों की बुद्धि अत्यन्त निपुण होती है क्योंकि उल्लुओं की दृष्टि अंधकार में रूप को ग्रहण करती है।

इन सबसे भी श्रेष्ठ है समता रस में लीन निर्विकार ज्ञाता-दृष्टा-टंकोत्कीर्ण-शुद्धात्मा।

हित-मित-प्रिय या हित-अमित-अप्रिय

सामान्य जन के लिए सामान्य परिस्थिति में तो हित-मित-प्रिय वचन ही श्रेष्ठ है परन्तु विशेष जन (हिताकांक्षी, सहृदयी, गुरु, माता-पिता, अभिभावक-डॉक्टर-वैद्य, न्यायाधीश आदि) के लिए विशेष परिस्थिति में विशेष, विशेष व्यक्तियों के लिए हित-मित-प्रिय से भी हित-अमित-अप्रिय वचन श्रेयस्कार है, श्रेष्ठ है, कथनीय है। जैसा कि-

गुरु कुम्हार कुंभ शिष्य है गढ़-गढ़ काढ़े खोट।

अंदर हाथ पसारकर, ऊपर मारे चोट।

परोपकारायददाति गौः पयः, परोपकारायफलान्ति वृक्षाः।

परोपकाराय वहन्ति नद्य, परोपकाराय सत्तां प्रवृत्तिः।

जैसा कि रोग को दूर करने वाली कड़ी औषधि रोग को वृद्धि करने वाला मिष्टान्न से भी श्रेष्ठ है उसी प्रकार हिताकांक्षी-हितोपदेशी सच्चे-अच्छे गुरु के कटु वचन भी उन ठग, वैश्या, चाटुकार के मधुर-प्रिय वचन से भी अधिक श्रेष्ठ है, सत्य है, गाह्य है। गुरु भी यदि शिष्य के हित के लिए कठोर वचन नहीं बोलते हैं तो कुगुरु

है। यथा-

दोषान् कांश्चन तान्प्रवर्तकतया प्रच्छाद्य गच्छत्ययं,

सार्धं तैः सहसा भ्रियेद्यदि गुरुः पश्चात् करोत्येष किम्।

तस्मान्मे न गुरुर्गुरतरान् कृत्वा लघूंश्च स्फुटं,

ब्रूते यः सततं समीक्ष्य निपुणं सोऽयं खलः सद्गुरुः।। (141)

कोई व्यक्ति गुरु-प्रवृत्ति कायम रखने के अभिप्राय से शिष्य में विद्यमान दोषों को छिपाता है और यदि उन दोषों के रहते हुए ही शिष्य का मरण हो जाए तो गुरु क्या करेगा? इसलिए ऐसा गुरु मेरा गुरु नहीं है तथा जो मेरे दोषों को देखने में प्रवीण अर्थात् निरन्तर मेरे दोषों को अच्छी तरह देखने वाला और मेरे थोड़े दोषों को भी बढ़ा-चढ़ाकर कहने वाला दुर्जन भी मेरा सच्चा गुरु है।

गुरु के कठोर वचन भी हितकारी हैं

विकाशयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशवः।

खेरिवारविन्दय कठोराश्च गुरुक्तयः। (142) (आ. शासन)

जिस प्रकार सूर्य की किरणें भी कमल को प्रफुल्लित करती है उसी प्रकार गुरु की कठोर वाणी भी भव्य जीव के मन को प्रफुल्लित करती है।

गुणागुणविवेकिभिर्विहितमप्यलं दूषणं,

भवेत् सदुपदेशवन्मतिमतामतिप्रीयते।

कृतं किमपि धार्ष्टयतः स्तवनमप्यतीर्थोषितैः,

न तोषयति तन्मनांसि खलु कष्टमज्ञानता।। (144) आत्मानुशासन

गुण-दोष के विवेक से युक्त सत्पुरुषों द्वारा अपने दोष अधिकता से प्रगट करना भी बुद्धिमानी जीवों को भले उपदेश के समान अत्यन्त प्रीति उत्पन्न करने वाला होता है और धर्मतीर्थ का सेवन न करने वाले (दुष्ट पुरुषों) द्वारा धीठता से किया गया गुणानुवाद भी उन बुद्धिमान विवेकी जीवों को संतोष उत्पन्न नहीं करता। परन्तु तुझे (शंकाकार को) अन्यथा भासित होता है; तेरी इस अज्ञानता से हमें खेद होता है।

त्यक्तहेत्वन्तरापेक्षौ गुणदोषनिबन्धनौ।

यस्यादानपरित्यागौ स एव विदुषां वरः।। (145)

अन्य कारणों की अपेक्षा छोड़कर जो जीव गुणों और दोषों के कारण ही ग्रहण और त्याग करते हैं, वे ही ज्ञानियों में श्रेष्ठ है।

हितं हित्वाऽहिते स्थित्वा दुर्धीदुःखायसे भृशम्।

ंविपर्यये तयोरेधि त्वं सुखायिष्यसे सुधीः।। (146) आत्मा.

हे जीव! तू दुर्बुद्धि होता हुआ हित को छोड़कर अहित में स्थित रहकर अपने को अत्यन्त दुःखी करता है, इसलिए अब इसका उल्टा कर! अर्थात् सुबुद्धि होता हुआ अहित छोड़कर हित में स्थित रहते हुए उसी की वृद्धि कर! इससे तू अपने स्वाभाविक सुख को प्राप्त करेगा।

प्राचीन महान् हितोपदेशी आचार्यों ने भी कभी-कभी शिष्यों को सुधारने के लिए कठोर वचनों का प्रयोग किया है। इसके साथ-साथ ही कोई विषय यदि शिष्य को समझ में नहीं आता है तो अनेक बार (अमित) समझाया है। समयसार जैसे आध्यात्मिक ग्रंथ तक में भी अनेक उदाहरणों के माध्यम से अनेक गाथाओं में एक ही विषय को समझाया गया है। किन्तु सामान्य व्यक्ति अहितकर वचन, विकथा आदि वाचालता से करते है तथा आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान से युक्त होकर अप्रिय बोलते है इसलिए उनको इस दुष्प्रवृत्ति से निवृत्त होने के लिए तो हित के साथ-साथ मित एवं प्रिय ही बोलना चाहिए।

कथंचित् मौन से भी श्रेष्ठ सत्य कथन-

समतापूर्वक मन-वचन-काय से मौनपूर्वक ध्यान-अध्ययन-साधन-लेखन आदि करना श्रेष्ठ है तथापि विशेष परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार हितकर-सत्य वचन बोलना मौन से भी श्रेयस्कार है। इसलिए मनुस्मृति में कहा है-मौनात्सत्यं विशिष्यते। जैनाचार्य ने भी कहा है-

मौन रहे या सत्य कहे-

मौनमेव हितं पुसां शाश्वत्सर्वार्थसिद्धये।
वचो वाचि प्रियं तथ्यं सर्वसत्वोपकारियत्।। (6)

पुरुषों को प्रथम तो समस्त प्रयोजनों का सिद्ध करने वाला निरन्तर मौन ही अवलंबन करना हितकारी है। और यदि वचन कहना ही पड़े तो ऐसा कहना चाहिए कि सबको प्यारा हो, सत्य हो और समस्त जनों का हित करने वाला हो।

धर्मनाशे क्रियाध्वंसे सुसिद्धांतार्थ विप्लवे।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूप प्रकाशने।। (ज्ञानार्णव)

जब जहाँ सत्य धर्म का नाश होता हो, यथार्थ क्रिया का विध्वंस होता हो, समीचीन सिद्धान्त-अर्थ का अपलाप या विनाश होता हो उस समय सम्यक् धर्म क्रिया

और सिद्धान्त के प्रचार-प्रसार, सुरक्षा के लिए बिना पूछे भी सज्जनों को बोलना चाहिए क्योंकि इससे धर्म की रक्षा होती है जिससे स्व-पर-राष्ट्र-विश्व की सुरक्षा समृद्धि होती है।

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासन माहात्म्य प्रकाशः स्यात्प्रभावना।।(18)

अज्ञानरूपी अंधकार के विस्तार को दूर कर अपनी शक्ति के अनुसार जिनशासन के अनुसार महात्म्य को प्रकट करना प्रभावना गुण है।

रूसउ वा परो मा वा, विसं वा परियतउ।
भासियव्वा हिया भासा सपक्खगुण करिया।। श्वे. साहित्य

जिसे उपदेश दिया जाता है, वह चाहे रोष करे, चाहे उपदेश को विष रूप समझे परन्तु उपदेशक को हितरूप वचन अवश्य कहना चाहिए।

न भवति धर्मः श्रोतुः सर्वस्यैकान्ततो हित श्रवणात्।
ब्रुवतोऽनुग्रहबुध्या वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति।।

उपदेश सुनने वाले सभी श्रोताओं को पुण्य नहीं होता है क्योंकि जो उपदेश अच्छी भावना से सुनता है, उसे पुण्य होता है। जो शुभ भावना से नहीं सुनता है उसे पुण्य नहीं होता है, परन्तु जो परोपकार की भावना से अनुग्रह बुद्धि से हितकर उपदेश करता है उसे अवश्य ही पुण्य होता है।

इसलिए तो पंचनमस्कार मंत्र में सिद्ध भगवान् के पहले अरिहंत भगवान् को नमस्कार किया गया भले सिद्ध भगवान् अरिहंत भगवान् से भी श्रेष्ठ हैं। क्योंकि सिद्ध भगवान् उपदेश नहीं देते हैं तथा अरिहंत भगवान् उपदेश देते हैं। इसलिए तो मार्गदर्शक-हितोपदेशी गुरु का स्थान सर्वोपरि है। ज्ञानदान/हितोपदेश को सबसे बड़ा पापरहित दान कहा गया है और ज्ञानदानी को गुरु कहा गया है। आहार, औषधि, अभय दान करने वाले दानी, पुण्यात्मा होते हुए भी गुरु नहीं है, गुरु के जैसे श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, पूजनीय नहीं है। यदि तीर्थंकर, केवली, गणधर, आचार्य, उपाध्याय, साधु, शिक्षक, समाज सुधारक, महान् क्रांतिकारी नेता, माता-पिता आदि हितोपदेश, शिक्षा, मार्गदर्शन नहीं देंगे तो मानव समाज का विकास ही रूक जायेगा।

समवशरण में भगवान् की दिव्यध्वनि का निसृत होना, महात्मा बुद्ध का धर्मचक्र प्रवर्तन, धर्म प्रचारक से लेकर साधु-संतों के प्रवचन (सत्संग, कथावाचन)

क्रांतिकारी नेता-समाज सुधारक आदि का भाषण, तत्त्वचर्चा, शंका समाधान आदि सब हितोपदेश के ही भेद-प्रभेद हैं। भले प्रवचन (प्र+वचन) सर्वज्ञ हितोपदेशी का ही होता है तथापि उनके अनुसार कथन करने वालों का भी प्रवचनसम (गौण रूप से प्रवचन) होता है और अपने-अपने क्षेत्र-विषयों में जो सत्य-तथ्य-हितकर वचन वह भी उपचार, व्यवहार से प्रवचन है। इन सबके द्वारा धर्मतीर्थ प्रवर्तन से लेकर लोक व्यवहार का भी प्रवर्तन होता है। ऐसे बहुगुण युक्त, ज्ञान-विज्ञान-नीति-समाजनीति-राजनीति-न्यायनीति के संवाहक, प्रवर्तक वचन-शक्ति का सदा-सर्वदा-सर्वथा सदुपयोग रूप में ही प्रयोग करना अनिवार्य है, वचन दुरुपयोग से विनाश-ही - विनाश संभव है। इसलिए कहा है-**''बातें हाथी पाये, बातें हाथी पायें''** अर्थात् अच्छे वचनों से पुरस्कार रूप में हाथी मिल सकता है तो गलत वचनों से हाथी के पैर के नीचे दबाकर मृत्यु दण्ड भी प्राप्त हो सकता है। इसलिए वचन बोलने के पहले तौलकर बोलना चाहिए अन्यथा मौन रहना ही श्रेयस्कर है। इसलिए नीतिकार कहते हैं-''बोलना चाँदी है तो मौन सोना है।'' अतएव बोलने के पहले विवेक से तौलकर बोले। कथंचित् धनुष से छोड़ा हुआ बाण को संहार (वापिस) करना संभव है परन्तु मुख से छोड़ा हुआ वाक्-बाण को संहार करना असंभव या असंभवसम या कष्ट साध्य है। जिस प्रकार कि आहार आदि दाता विशेष, पात्र विशेष, द्रव्य विशेष, विधि विशेष, क्षेत्र विशेष, काल विशेष आदि के अनुसार दिया जाता है उसी प्रकार या उससे भी अधिक महादान स्वरूप ज्ञानदान/हितोपदेश को दातादि विशेष से युक्त होकर देना चाहिए लेना चाहिए अन्यथा लाभ से अधिक हानियाँ संभव है।

मेरा विश्व रूप

(मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय) (मेरी अनन्त भूत-वर्तमान तथा अनन्त भविष्यत का स्वरूप)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : उड़िया-बंगला राग...कोधाये स्वर्ग, कोथाये नर्क के बोले ते बहुदूर-रवीन्द्र संगीत....)

कहाँ भी मैं नहीं...मुझमें ही सही...द्रव्य-गुण-पर्याय मुझमें स्थित।
आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष...मेरे सुख-दुःखादि मुझमें स्थित।।ध्रुव।।
''सद् द्रव्य लक्षणं'' होने से मैं सत्य, मैं हूँ जीव द्रव्य स्वयंभू-शाश्वत।

जब से है विश्व तब से मैं स्थित, अजर-अमर-नित्य-अमृत।।
''गुण-पर्ययवत् द्रव्यं'' होने से, अनन्त गुण-पर्याय मुझमें स्थित।
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्, भले इस हेतु अन्य द्रव्य निमित्त।।1।।

अनादि कालीन कर्म बन्ध से, अभी मैं अशुद्ध रूप में स्थित।
गुण-पर्याय आदि अभी अशुद्ध, अशुद्धता भी मेरी मुझमें स्थित।।
राग-द्वेष व मोह के कारण ही, मेरे आत्मप्रदेश में होते कम्पन्न।
जिससे होता है कर्मों का आस्रव, आस्रव से होता कर्मों का बन्ध।।(2)

इससे ही मेरे जन्म व मरण, चौरासीलक्ष्ययोनियों में किया भ्रमण।
पंचपरिवर्तन रूपी चतुर्गति में, विश्व के मध्य में किया भ्रमण।।
पंचलब्धि देव-शास्त्र-गुरु पाकर, मेरे गुण मुझमें हो रहे उजागर।
'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' पाकर, मेरे अनन्त गुणों का करूँ श्रद्धान।।(3)

इससे मेरे ज्ञान हुए सम्यक्, मतिश्रुत दोनों हुए सम्यक्।
जिससे विश्व का हो रहा सही ज्ञान, अतः मम ज्ञान वीतराग विज्ञान।।
इससे हुआ स्व-पर भेद विज्ञान, मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध-आनन्द घन।
मुझसे परे सभी से मैं हूँ भिन्न, 'अहंकार' ममकार हो रहे क्षीण।।(4)

यहाँ से प्रारम्भ मम श्रमणावस्था, स्व-उपलब्धि हेतु (स्वयं में) करूँ पुरुषार्थ
ज्ञान-ध्यान-तप रूप करूँ प्रवृत्ति, समता-शान्ति व वैराग्य वृत्ति।।
अतः मेरी बाह्य प्रवृत्ति हो रही क्षीण, ख्याति-पूजा-लाभ में न लगे मन।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश हो रहे दूर, आकर्षण-विकर्षण द्वन्द भी चूर।।(5)

अपना-पराया भेद-भाव से परे, स्व-पर-विश्वकल्याण भावना भरे।
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थभाव, उदार-सहिष्णु व पावन भाव।।
यह मोक्षमार्ग मुझमें प्रारम्भ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।
मम मोक्षमार्ग में मम है गमन, मेरे द्वारा (ही) मुझमें परिणमन।।(6)

इससे मम हो रहे संवर-निर्जरा, आत्मविकास करुँगा श्रेणी आरोहन द्वारा।
परम विशुद्ध भाव से करुँगा कर्म क्षय, जिससे पाऊँगा सुख अनन्त अक्षय।।
मेरे सद्भाव से मम यह सम्भव, मेरे अभाव से यह नहीं सम्भव।
अतएव मैं मेरा कर्त्ता व भोक्ता, 'कनक' अन्य का न कर्त्ता-भोक्ता।।(7)

ओबरी 05.03.2018 मध्याह्न 01:08

सन्दर्भ-

स्वयं को तथा धरती को उबारना

इस संक्रमण काल में एड्स का संकट बढ़ता जा रहा है। इस संकट से ऐसा लगता है मानो हम एक-दूसरे के प्रति कितने प्रेमहीन व पूर्व धारणा से ग्रसित हैं। एड्स से पीड़ित लोगों के प्रति हमारा रवैया कितना संवेदनहीन होता है। एक काम, जिसे मैं सचमुच इस धरती पर किया जाना पसंद करूँगी और जिसे निर्मित करने में मैं सचमुच मदद करूँगी, वह है एक ऐसी दुनिया का निर्माण करना, जहाँ हमारा एक-दूसरे से प्रेम करना सुरक्षित हो।

जब हम छोटे थे, तब चाहते थे कि हमें, जैसे हम हैं, वैसे ही प्रेम किया जाए, भले चाहे हम दुबले-पतले, मोटे-ताजे, कुरूप या झेंपू हों। इस धरती पर हमारे आने का उद्देश्य है-शर्तहीन प्रेम सीखना। पहले इसे (शर्तहीन प्रेम) स्वयं के प्रति तत्पश्चात् इसे औरों को देने के लिए। हमें 'उन्हें' और 'हमें' शब्दों से छुटकारा पाना होगा और केवल 'हम' को याद रखना होगा। हममें से कई ऐसे परिवारों में पलते-बढ़ते हैं, जहाँ पूर्वग्रह सामान्य व प्राकृतिक तौर पर पाया जाता था। वहाँ यह समूह या वह समूह उतना अच्छा नहीं होना माना जाता था। किन्तु जब तक हम ऐसी सोच रखते हैं कि कोई व्यक्ति या समूह अच्छा नहीं है, तब तक यही दरशाते हैं कि हम स्वयं अच्छे नहीं है। याद रखें, हम सभी एक-दूसरे के दर्पण हैं।

मुझे अपना दि ओप्रा विन्फ्रे शो में आमंत्रित किया जाना याद है। मैं टी.वी. पर पाँच ऐसे लोगों के साथ उपस्थित हुई, जिन्हें एड्स था। हम छह लोग उस शाम भोजन से पहले मिले और यह अविश्सनीय रूप से जोरदार मीटिंग रही। जब हम भोजन करने के लिए बैठे तो माहौल काफी उत्साहपूर्ण था। मेरी आँखें नम हो उठीं, क्योंकि ऐसे मौके के लिए मैं वर्षों से प्रयासरत थी, ताकि मैं अमेरिका के लोगों को सकारात्मक संदेश दे सकती कि अभी भी उम्मीद है। वे लोग स्वयं को उबार रहे थे, जो कि सरल काम नहीं था। मेडिकल कम्युनिटी ने उनकी मौत घोषित कर दी थी। उन्हें कई विधियों को आजमाने के लिए अलग-अलग परीक्षाओं के दौर से गुजरना था। और वे अपनी सीमाओं के परे जाने के लिए तैयार थे।

अगले दिन हम कार्यक्रम में शामिल हुए और यह एक बहुत अच्छा शो रहा। मुझे इस बात की खुशी थी कि एड्स-पीड़ित महिलाओं का भी उस शो में प्रतिनिधित्व किया गया था। मैं चाहती थी कि मध्य अमेरिका अपना दिल खोलकर महसूस करे कि

एड्स ऐसे समूह को प्रभावित नहीं करता, जिसकी उन्हें परवाह नहीं है। वह हर किसी को प्रभावित करता है। जब मैं शोर से बाहर आई, ओप्रा ने मुझे कैंसर से परे कहा, ''लुईस, लुइस, लुइस!'' वह मेरे पास पहुँची और मुझे गले लगा लिया।

मेरा यकीन है कि उस दिन हमने आशा का संदेश प्रसारित किया। मैंने डॉ. बर्नी सिएगल को कहते सुना है कि एक ऐसा व्यक्ति है, जिसने स्वयं का हर तरह के कैंसर से उपचार किया हैं। तो उम्मीद सदा विद्यमान रहती है और उम्मीदों से ही हमें संभावनाएँ मिलती हैं। अपने हाथ खड़े कर कोई उम्मीद न होने की बात करने के बदले हमें उस दिशा में कुछ करना चाहिए।

एड्स का वायरस तो अपनी प्रकृति के अनुरूप अपना काम करता है। इस तथ्य को महसूस करके मेरा दिल टूट जाता है कि बहुत से ऐसे विषमलैंगिक लोग हैं, जो मात्र इसलिए मरने जा रहे हैं कि सरकार और चिकित्सा जगत् ने उनकी ओर पूरी गति से प्रयास नहीं किया। जब तक एड्स को समलैंगिक बीमारी समझा जाता रहेगा, तब तक इसके प्रति उतना ध्यान आकर्षित नहीं किया जा सकेगा, जितना जरूरी है। इसके पहले इसे मान्य बीमारी माना जाए, कितने और लोगों को इसका शिकार होना पड़ेगा।

मेरा मानना है कि जितनी तेज गति से हम अपने पूर्वग्रहों को त्यागकर इस संकट के प्रति सकारात्मक निर्णय ले सकें, उतनी तेजी से सारे संसार का उपचार हो सकेगा। किन्तु जब तक लोग पीड़ित रहेंगे, तब तक धरती का उध्दार नहीं हो सकता। मैं तो एड्स को इस धरती के प्रदूषण का हिस्सा मानती हूँ। क्या आप महसूस करते हैं कि कैलीफोर्निया तट पर डॉल्फिन प्रतिरोधक क्षमता की कमी वाली बीमारियों से मर रही है। मैं नहीं समझती कि ऐसा उनके यौन व्यवहार की वजह से होगा। हम अपनी धरती को इतना प्रदूषित कर चुके हैं कि बहुत सी वनस्पतियाँ खाने योग्य नहीं रह गई हैं। हम पानी में मछलियाँ मार रहे हैं। हम हवा को प्रदूषित कर रहे हैं। अम्लीय वर्षा हो रही है तथा ओजोन परत में छेद हो गया है। और हम लगातार अपना शरीर प्रदूषित कर रहे हैं।

एड्स एक भयंकर बीमारी है, फिर भी इससे मरने वाले लोगों की संख्या उन लोगों से कम है, जो कैंसर, धूम्रपान और हृदय रोग से पीड़ित हैं। जिन बीमारियों को हम पैदा करते हैं, उनसे लड़ने के लिए हम उनसे ज्यादा शक्तिशाली जहरों की खोज करते हैं, फिर भी हम अपनी जीवन-शैली व आहार आदतों को नहीं बदलते। या तो

अपनी बीमारियों को दबाने के लिए हमें कुछ दवाओं की जरूरत है या हम उसका उपचार करने के बदले सर्जिकल तरीके से उसे हटाना चाहते हैं। हम उन्हें जितना दबाते हैं, उतनी ही ज्यादा वे समस्याएँ दूसरे तरीके से प्रकट होती हैं। यह जानकारी कहीं ज्यादा अविश्वसनीय है कि दवाएँ व शल्य-चिकित्सा हर तरह की बीमारियों की 10 प्रतिशत ही देखभाल करती हैं। यह सही है। रसायनों, विकिरण और सर्जरी इत्यादि पर हम जितना पैसा खर्च करते हैं, उससे बीमारियाँ मात्र 10 प्रतिशत ही ठीक होती है।

मैंने एक लेख पढ़ा था, जिसमें बताया गया कि अगली शताब्दी में नए तरह के बैक्टीरिया हमारी कमजोर पड़ चुकी प्रतिरोधी क्षमता को जितना ठीक करते हैं, उतनी ही शीघ्रता से हम स्वयं व संपूर्ण पृथ्वी ग्रह को उपचारित कर सकते हैं। और प्रतिरोधीय क्षमता से मेरा आशय केवल शारीरिक प्रतिरोधी क्षमता प्रणाली से नहीं है; मेरा आशय हमारे मानसिक व भावनात्मक प्रतिरोधी प्रणाली से है।

मेरे विचार से, आरोग्य देना और उपचार करना दो अलग-अलग बातें हैं। मेरा खयाल है, आरोग्य करने में टीम प्रयास होता है। यदि आप अपने डॉक्टर से स्वयं को ठीक करने के लिए कहते हैं तो वह आपकी बीमारियों के लक्षणों पर ध्यान केन्द्रित करता हैं, किन्तु इससे बीमार व्यक्ति आरोग्य को प्राप्त नहीं होता। आरोग्य प्राप्त करने के लिए आपको एक दल या टीम का अंग होना होता है, जिसमें आप और आपका चिकित्सक शामिल होते हैं। ऐसे बहुत से हॉलिस्टिक एम.डी. डॉक्टर हैं, जो न केवल आपका शारीरिक उपचार करते हैं, बल्कि आपको एक पूर्ण व्यक्ति के रूप में भी देखते हैं।

हम त्रुटिपूर्ण सोच या धारणा प्रणाली के साथ जीते रहे हैं, जो कि न केवल व्यक्तिगत हैं, बल्कि सामाजिक भी हैं। ऐसे भी लोग हैं, जो कहते हैं कि कान का दर्द उनके परिवार में चला आ रहा है। दूसरे यह मानते हैं कि जब वे बारिश में बाहर निकलते हैं तो उन्हें सर्दी लग जाती है या हर शीत ऋतु में उन्हें तीन बार सर्दी होती है। जब ऑफिस में किसी को सर्दी लग जाती है तो वह संक्रमण के कारण ही कही जाती है। 'संक्रमण' एक सोच है और यही सोच संक्रमण है।

बहुत से लोग बीमारियों को आनुवंशिक मानते हैं। मैं नहीं समझती कि अनिवार्य रूप से ऐसा ही है। मेरा मानना है कि हम अपने माता-पिता से मानसिक सोच की रूपरेखा प्राप्त करते हैं। बच्चे बहुत सजग होते हैं। वे उनकी उस सोच का

अनुसरण करते हैं। यह अनुसरण उनकी अपनी बीमारियों का भी होता है। यदि कोई पिता किसी खास तरीके से नाराज होता है तो वह गुण बच्चा भी सीख लेता हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि जब पिता को वर्षों बाद उच्च रक्तचाप होता है तो बच्चे को भी आगे चलकर वही बीमारी हो जाती है। हर कोई जानता है कि कैंसर संक्रामक नहीं होता, फिर भी यह परिवारों में क्यों होता चला जाता है? क्योंकि इससे जुड़े लक्षण या सोच परिवार में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही होती है। परिवारों में रोष का एक विशेष ढाँचा भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आ रहा होता है और अंततः वह शरीर में एक बीमारी के रूप में प्रकट हो जाता है।

हमें हर चीज के प्रति स्वयं को सजग होने देना चाहिए, ताकि हम सचेत व बौद्धिक पसंदगी अपना सकें। कुछ चीजें हमें डरा सकती हैं (जो कि जागने की प्रक्रिया का हिस्सा होती हैं), लेकिन हम उनके विषय में कुछ कर तो सकते हैं। ब्रह्माण्ड की हरेक चीज, जिसमें बाल शोषण, एड्स से लेकर बेघर-बार होने की स्थिति भी शामिल हैं, प्रेम चाहती हैं। एक छोटा बच्चा, जिसे प्रेम व प्रशंसा मिलती है, वह एक ताकतवर, आत्मविश्वासी वयस्क के रूप में बड़ा होता है। यह धरती, जिसमें हमारे और सभी जीवों के लिए प्रचुरता विद्यमान हैं, हम सभी का खयाल रख सकती है, बशर्ते हमें इसकी निजता में आने दें। आइए, अपने बीते समय की सीमाओं पर ही न अटके बैठे रहें।

आइए, हम अविश्वसनीय दशक की शक्तियों को ग्रहण करने के लिए स्वयं को तैयार करें। हम इस शताब्दी के अंतिम दस वर्षों को उपचार के काल के रूप में निर्मित कर सकते हैं। हमारे भीतर अपने शरीर, अपनी भावनाओं और सभी गड़बड़ियों को ठीक करने की क्षमता है। हम अपने आस-पास नजर दौड़ाकर देख सकते हैं कि हमें किस चीज की जरूरत है। हममें से प्रत्येक की जीवन-शैली के चुनाव का प्रभाव हमारे भविष्य और हमारी दुनिया पर पड़ेगा।

हम सभी को सर्वोत्तम अच्छाई के लिए

आप इस समय का प्रयोग अपने व्यक्तिगत विकास विधियों को संपूर्ण पृथ्वी के लिए कर सकते हैं। यदि आप केवल संसार के लिए कर रहे हैं और अपने लिए नहीं कर रहे तो आप संतुलित नहीं है। यदि आप केवल अपने लिए करते हैं और वहीं रुक जाते हैं तो वह भी संतुलित नहीं कहा जाएगा।

तो आइए, देखें कि हम स्वयं और वातावरण को संतुलित करने की शुरुआत

कैसे कर सकते हैं। हम जानते हैं कि हमारे विचारों से हमारा जीवन गढ़ता और निर्मित होता है; पर हम इस दर्शन को पूरी तरह नहीं जीते। हमने आधारभूत ढाँचे को ही स्वीकार किया है। यदि हम अपनी निकटतम दुनिया को बदलना चाहते हैं तो हमें अपनी सोच को भी बदलना होगा। यदि हम अपने संसार को अपेक्षाकृत अधिक विस्तार के साथ बदलना चाहते हैं तो हमें इससे जुड़ी सोच भी बदलनी पड़ेगी, इसे 'हमें' और 'उन्हें' के रूप में नहीं देखना होगा। आपके द्वारा किए जा रहे दुनिया की खामियों से सभी शिकायतों के बदले यदि उसकी ऊर्जा का प्रयोग दुनिया के लिए सकारात्मक उद्‌गार व कल्पना-प्रक्रिया के लिए किया जाता है तो आप चहुँओर परिवर्तन ला सकते हैं। याद रखिए, जब-जब आप अपने मन का प्रयोग करते हैं, आप समान विचार के लोगों के साथ जुड़ जाते हैं। यदि आप दूसरों के लिए निर्णय, आलोचना और पूर्वग्रह प्रयोग करते हैं तो आप ऐसे सभी लोगों के साथ जुड़ जाते हैं, जो इसी कृत्य में जुटे हुए हैं। किन्तु यदि आप ध्यान कर रहे हैं, शांति की कल्पना कर रहे हैं, स्वयं को प्रेम कर रहे हैं और धरती को प्रेम कर रहे हैं तो आप इसी तरह के लोगों के साथ जुड़े रहे हैं। भले ही आप अपने घर पर हों, बिस्तर पर लेटे हों, तब भी अपने मन का प्रयोग करके आप धरती को आरोग्य दे सकते हैं। एक बार संयुक्त राष्ट्र संघ के रॉबर्ट स्कलर को मैंने कहते हुए सुना, ''मानव जाति को यह जान लेने की जरूरत है कि हम शांति प्राप्त करने के योग्य हैं।'' ये शब्द कितने सार्थक व सच्चे हैं।

''स्व-उपलब्धि ही सर्व उपलब्धि''

(स्व-आत्म सम्बोधन एवं मेरा अन्तिम लक्ष्य)

(राग : कसमें वादे प्यार वफा सब बातें हैं....)

तू ही तेरा परम सत्य है...अन्य सब सहयोग है
तू ही तेरा आदि अन्त....मध्य शाश्वतिक/(सार्वभौम) सत्य है...(स्थायी/धत्ता)...
जब से हैऽऽ ब्रह्माण्ड भी यह...तब से तेरा भी अस्तित्वऽऽ
अनादि अनन्तऽऽ शाश्वतिक यह...तेरा भी हैऽऽ सह अस्तित्व
तू ही तेरा परम ...सत्य है...(1)

तू तो चेतन ऽऽ ज्ञानानन्दमय...विश्व/(ब्रह्माण्ड) उभय रूप हैऽऽ
तेरे समान हीऽऽ अनन्त चेतन...और भी अचेतन रूप हैऽऽ
तू ही तेरा परम ...सत्य है...(2)

अणु से लेकरऽऽ निहारिका तक..अनन्त अचेतन रूप हैऽऽ
निगोदिया सेऽऽ...निन्त्यानन्दमय...अनन्त चिन्मय रूप हैऽऽ
तू ही तेरा परम ...सत्य है...(3)

तेरा अस्तित्वऽऽ यदि न होता...अन्य से (तेरा) क्या लाभ हैऽऽ
तूझे तू हीऽऽ यदि न पाया/(मिला) तो...अन्य लाभ क्या लाभ हैऽऽ
तू ही तेरा परम ...सत्य है...(4)

यदि शरीर मेंऽऽ तू न रहा तो...शरीर जड़ का पिण्ड हैऽऽ
जलाओ गाढ़ोऽऽ या फेंक दो...तुझसे नहीं सम्बन्ध हैऽऽ
तू ही तेरा परम ...सत्य है...(5)

ऐसा ही तेराऽऽ अस्तित्व कारण...विश्व/(ब्रह्माण्ड) अस्तित्त्ववान हैऽऽ
अन्यथा स्वऽऽ अस्तित्व बिन...तेरे लिए सत्ता शून्य हैऽऽ
तू ही तेरा परम ...सत्य है...(6)

तू है ज्ञाताऽऽ ब्रह्माण्ड ज्ञेय...ज्ञाता बिना न ज्ञेय हैऽऽ
ज्ञाता-ज्ञेयऽऽ उभय सम्बन्ध...ज्ञाता से ज्ञेय अनुबन्ध हैऽऽ
तू ही तेरा परम ...सत्य है...(7)

यथा दीपऽऽ स्व-पर प्रकाशी...ज्योति से प्रकाशित द्रव्य हैऽऽ
द्रव्य से दीपऽऽ न प्रकाशित है...तथा ही ज्ञान व ज्ञेय है
तू ही तेरा परम ...सत्य है...(8)

इसीलिए तोऽऽ स्वयं को जानो...ब्रह्माण्ड/(विश्व) बनेगा ज्ञेय हैऽऽ
स्वज्ञान हेतुऽऽ अनन्तज्ञान...जिससे ब्रह्माण्ड ज्ञेय है
तू ही तेरा परम ...सत्य है...(9)

स्वात्मोपलब्धिऽऽ सर्वोपलब्धि...यह आध्यात्मिक सार हैऽऽ
'कनकनन्दी' काऽऽ सर्वस्व यह...अन्य तो मिथ्या मोह हैऽऽ
तू ही तेरा परम ...सत्य है...(10)

''समाधि से स्वात्मोपलब्धि''

(सामाधिमरण का स्वरूप एवं फल)

(तर्ज : 1. सुनो! सुनो! हे दुनियाँ वालों...2. सत्वेषु मैत्री गुणिषु...)

सुनो! सुनो! हे दुनियाँ वालों, वीरमण की सच्ची पद्धति।
जो वरता है वीरमरण, संसार-चक्र/(बन्ध)/(दुःख) से पाता निवृत्ति।।धु.।।

इसे कहते हैं समाधिमरण...संथारा या संल्लेखना वृत्ति।
इसी से जीव को प्राप्त होती...स्वर्ग से लेकर मोक्ष विभूति।।1।।

यह है उच्च आध्यात्मिक क्रिया...सामान्य जन की नहीं प्रवृत्ति।
मोह ममत्व कषाय त्याग...यथार्थ से है दुरूह वृत्ति।।2।।

युद्ध में मृत्यु वरण करना..कंथचित् है सरल वृत्ति।
समतापूर्वक आत्मलीनता में...मृत्यु वरना दुर्लभ/(दुरूह) वृत्ति।।3।।

आत्महत्या तो कायरजनों की...पलायनवादी नीच प्रवृत्ति।
उनमें होती हैं क्रोध-मान-माया...लोभ या काम की क्षुद्र प्रवृत्ति।।4।।

इससे भिन्न समाधि में होती...आत्मशुद्धि की प्रबल वृत्ति।
तनाव दबाव फोबिया संक्लेश...आवेशरहित आत्मविशुद्धि/(आत्मिक वृत्ति)।।5।।

अप्रतिकार उपसर्ग व जरा...रोग/(अकाल) दुर्भिक्ष आदि निमित्ते/(होने से)।
मरण वरना वीरमरण है...भाव दुर्बलता नहीं होने से।।6।।

मरण अवश्यम्भावी जीव का...क्यों स्वोद्धार हेतु मरा न जाये।
कायर का भी मरण निश्चित...वीरमरण को क्यों न धारे।।7।।

कषाय/(संक्लेश) सहित जो मरण होता...उससे आत्मा का होता पतन।
कषाय रहित सल्लेखना से..आत्मा का अवश्य होता उत्थान।।8।।

इसी कारण से महापुरुष...सल्लेखना से वरते मरण।
केवलज्ञानी का होता मरण...वह होता है श्रेष्ठ मरण।।9।।

पण्डित-पण्डित मरण युक्त...केवली करते मोक्ष प्रयाण।
जन्म-जरा-मृत्यु-रोगरहित...मोक्ष में पाते हैं आनंदधन/(आनंदधाम)।।10।।

साधुसमाधि है पण्डितमरण...जिससे पाते वे स्वर्ग का धाम।
स्वर्ग से मानव जन्म पाकर...पुनः करते आत्म उत्थान/(कल्याण)।।11।।

साधु बनके साधना करके...केवली बन कर मोक्ष प्रयाण।
तथाहि व्रती सम्यग्दृष्टि भी...स्वयोग्य करते समाधिमरण।।12।।

वे भी स्वर्गादि गति पाकर...अन्त में जाते मोक्ष के धाम।

इसीलिए तो समाधिमरण...आत्मोत्थान के लिये सोपान।।13।।

इसके विस्तार परिज्ञान हेतु...करो अध्ययन जैन आगम।
श्रावकाचार मरणकण्डिका...भगवती आराधना बहु प्रमाण।।14।।

तथाहि महाभारत आदि...वैदिक ग्रन्थों में मिले प्रमाण।
मैंने भी मेरे ग्रन्थों के मध्ये...सल्लेखना का किया वर्णन।।15।।

अभी भी जैन साधु-साध्वी आदि...अन्त में करते समाधिमरण।
विनोबा भावे भी जैन धर्मानुसार...अन्त में किया है समाधिमरण।।16।।

समाधिमरण समाधि साधना...आत्मलीनता है आत्मसाधना।
यह भारतीय आध्यात्मपद्धति...अन्य संस्कृति में नहीं साधना।।17।।

भौतिकवादी देहात्मवादी...भोगवादी की भी नहीं साधना।
परमात्म/(शुद्धात्म) रूप बनने हेतु...समाधिमरण है अन्तः साधना।।18।।

बोधि समाधि परिणामशुद्धि...स्वात्मोपलब्धि शिवसौख्यसिद्धिः।
इसी हेतु ही कनकनन्दी...त्याग करता है सर्व प्रसिद्धि।।19।।

''स्वात्म भवन में आनन्द घन है''

(निजानन्द प्राप्ति के उपाय)

(राग : 1. मोक्ष पद मिलता....2. आओ झूले मेरे चेतन....)

आओ धीरे-धीरे चेतन आतम/(आनन्द) भुवन में....2
आनन्द भुवन में चेतन अपने भवन मेंऽऽऽ...
अपने भवन में चेतन...अपने रूप में...।।(टेक)

शरीर इन्द्रियों से परे मन है, मन से परे चेतन भाव हैऽऽ
चेतन भाव ही तेरा भुवन/(भवन) है, उसी में तेरा आत्मानन्द है।।1।।

आओ धीरे...

आनन्द घन रूप तेरा ही घर है, उसी की प्राप्ति का विश्वास/(प्रतीति) कर है/(ले)ऽऽ
उसी की प्राप्ति हेतु संकल्प कर है, सतत प्रयत्न मनन कर है/(ले)।।2।।

आओ धीरे....

विषय कषायों को दूर भी कर है, संक्लेश भावों को क्षीण/(नाश) भी कर हैऽऽ

धैर्य व संयम से समता वर है, सहनशीलता से क्षमा को कर है।।3।।

आओ धीरे...

शत्रु व मित्रता का भाव न धर है, राग व द्वेष को समाप्त कर हैऽऽ
अपना पराया का भेद न कर है, समत्व का भाव सर्वत्र कर है।।4।।

आओ धीरे...

हानि-लाभ को चित्त न धर है, ख्याति-पूजा को दूर ही कर हैऽऽ
ईर्ष्या व घृणा को शान्त ही कर है, दीन अहं का भाव न धर है।।5।।

आओ धीरे...

द्रव्य आगम/(श्रुत) को भाव में कर है, भाव से भावना स्वयं की कर हैऽऽ
इसी से विभाव दूर ही कर है, चित्त से चैतन्य शुद्ध करो है।।6।।

आओ धीरे...

अभिन्न षट्कारक को वर है, अन्य प्रपंच को दूर कर हैऽऽ
निज को निज द्वारा प्राप्त कर हैं, अन्य से अप्रभावित रहा करो रे।।7।।

आओ धीरे....

स्व-वैभव का श्रवण कर ले, उसी का अध्ययन मनन कर लेऽऽ
ध्यान व लीनता स्वयं में कर ले, सच्चिदानन्द स्वयं को वर ले/(तेरा ही घर है।।9।।

आओ धीरे...

'कनकनन्दी' तेरा अमूर्त घर है, अजर-अमर शाश्वत घर है/(पुर है)ऽऽ
इसी के अतिरिक्त कहीं न वास कर, तब ही मिलेगा आनन्द घनपुर/(आनन्द भरपूर)।।10।।

आओ धीरे...

कानून से परे नीति सत्य आध्यात्मिक

(आध्यात्मिक सब से परे है-मानवकृत कानून सबसे परे नहीं)

(राग : 1. यमुना किनारे...2. शत-शत वन्दन....)

सब से परे कानून नहीं होता, कानून से परे नैतिक होता।
नैतिक से परे सत्य भी होता, आध्यात्मिक सब से परे होता।।टेक।।

कानून निर्माता जो लोग होते, राजा मंत्री सांसद आदि होते।
वे न सर्वज्ञ वीतरागी होते, राग द्वेष मोह से युक्त होते।।(1)

संकीर्ण स्वार्थी व अल्पज्ञ होते, भेदभाव पक्षपात युक्त होंते।
आलस्य प्रमाद से भी युक्त होते, फैशन व्यसनों से भी युक्त होते।।(2)

ईर्ष्या तृष्णा काम से भी युक्त होते, दबाव प्रलोभन से भी युक्त होते।
अहंकार भय से भी सहित होते, पूर्णतः निर्दोष कोई नहीं होते।।(3)

(यथा) ग्रीक आदि देश की दास प्रथा, पाश्चात्य देश की रंग भेद प्रथा।
आक्रमणकारियों के यथा कानून, शोषणकारी उपनिवेश कानून।।(4)

तानाशाहियों के क्रूर कानून, धर्म द्वेषी जंजिया कर कानून।
वधशाला योग्य हिंस्र कानून, मत्स्य न्याय आदि सम सर्व कानून।।(5)

अयोग्य कानून को जो तोड़ते, वे जन मानवों के हितैषी होते।
तीर्थंकर बुद्ध गांधी सुभाष, राजाराम मोहन राय मण्डेला नेलसन।।(6)

अब्राहम लिंकन व कार्ल मार्क्स, समाज सुधारक वैज्ञानिक संत।
इसी से समाज का विकास होता, नैतिक सत्य व आध्यात्मिक।।(7)

क्या दान सेवा व परोपकार, संवेदनशीलता हित विचार।
स्वेच्छा से जो अच्छे काम होते, कानून से परे वे काम होते।।(8)

कानून संविधान प्रतिशोध बना, लोभ प्रलोभन भय के बिना।
नैतिक भाव व्यवहार होते, कानून से ये न संभव होते।।(9)

सत्य है सनातन अकृत्रिम, कानून संविधान ये नहीं कृत।
सत्य है सर्वव्यापी द्रव्य स्वभाव, सत्य शिव सुंदर शाश्वत भाव।।(10)

वाद-विवाद व साक्षी से परे, तर्क-वितर्क व इन्द्रिय परे।
विज्ञान से भी अज्ञात पूर्ण सत्य, न्यायाधीश से भी परे सत्य।।(11)

आध्यात्मिक है शुद्ध चैतन्य, ज्ञान-दर्शन वीर्य आनंद घन।
सच्चिदानंदमय अमृत भाव, राग द्वेष मोह रहित भाव।।(12)

मन-तन-इंद्रिय परे ये भाव, सत्ता-सम्पत्ति से परे ये भाव।
जन्म-जरा मरण रहित भाव, शत्रु मित्र परे समता भाव।।(13)

अन्याय-अत्याचार पापों से रिक्त, सप्त-व्यसन व कषाय रिक्त।
आधि-व्याधि-उपाधि रहित, द्रव्य-भाव नोकर्म रहित।।(14)

इसी हेतु राजा महाराजा, विद्वान्, सर्व सन्यास लेकर करते ध्यान।

चक्रवर्ती भी इन्हें करते नमन, विश्व वंदनीय सर्वश्रेष्ठ महान्।।(15)

कानून होता दुष्ट दुर्जन हेतु, यथा औषधि रोगी के हेतु।
स्वस्थ सबल जो होते प्रसन्न, उन्हें न चाहिए वैद्य महान्।।(16)

मानव हित हेतु होता है न्याय, अमान्य योग्य जो होता कुन्याय।
कानून से परे होते सज्जन, औषधि परे होते निरोगी जन।।(17)

कानून से भय खाता है दोषी, निर्भय शांत होता निर्दोषी।
सज्जन पापों से होते हैं भीत, दुर्जन पापों से न होते भीत।।(18)

विश्वमानवों को आह्वान मेरा, सत्य न्याय को जानो हे! खरा।
आध्यात्मिक हेतु करो प्रयास, 'कनकनन्दी' का तुम्हें आशीष।।

मैं हूँ स्वयंपूर्ण, अतः निस्पृही-वीतरागी हूँ

(चाल : तुम्हीं मेरे मंदिर..., रघुपति राघव....)

विपरीत द्रव्य-क्षेत्र-काल व जनों से, निर्लिप्त रहना (है) मुझे कमल यथा जल/(सा भाव) से।
अनंत जीव तथा अनंत कर्म है, कभी न होगा अनुकूल संसार है।।

स्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सु बनाऊँ, स्वयं के द्वारा मैं स्वयं को पाऊँ।
अभेद कारक मैं स्वयं में ही बनूँ, भेद कारक यथायोग्य मैं पाऊँ।।

परस्पर उपकारी हर द्रव्य होते हैं, उपकारी हर जीव होते हैं।
तथापि स्व-गुणों को त्याग न करे हैं, तथाहि मैं स्वभाव को न त्याग कर हूँ।।

मुझमें है अनंत ज्ञान व दर्शन, सुख वीर्य व सम्यग्दर्शन।
अस्तित्व वस्तुत्व व अगुरुलघु गुण, सूक्ष्मत्व अव्याबाध अविनाशी गुण।।

अतएव मैं हूँ स्वयं में ही पूर्ण, अनंत गुण गण सुख के धाम।
स्वावलंबी हूँ मैं स्वतंत्र स्वभावी, ''कनक'' अतएव बाह्य से वीतरागी।।

शरीर रहित होने पर लाभ

(मेरा शुद्ध-स्वरूप)

(राग : शत-शत वन्दन...., सायोनारा...,छोटी-छोटी गैंया....)

शरीर रहित यदि मैं होता...समस्याओं से रहित होता...
जन्म जरा मृत्यु रहित होता...सत् चित् आनन्द अमूर्त होता...ध्रुवपद...

क्षुधा तृषा रूजा रहित होता...असि मसि कृषि रहित होता...
वाणिज्य शिल्प सेवा नहीं करता...आनंद घन कृतकृत्य मैं होता...
स्वामी-भृत्य भेद-भाव नहीं होता...छोटा-बड़ा भेद-भाव नहीं होता...
शोषक-शोषित का भाव न होता...सत्य समता सुखमय मैं होता...(1)...

सर्दी-गर्मी की न होती समस्या...संयोग-वियोग की न होती समस्या...
शंका-चिन्ता न अशांति होती...शांति तृप्ति व पूर्णता होती...
शत्रु-मित्र भेद-भाव नहीं होता...विकल्प न हानि लाभ का होता...
विकल्प न जय-पराजय का होता...निर्विकल्प चिन्मय होता...(2)...
राग-द्वेष-मोह से रहित होता...रत्नत्रयमय स्वरूप होता...
आकर्षण-विकर्षण रहित होता...संक्लेश-संकल्प से रहित होता...
द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित होता...उत्पाद व्यय ध्रौव्यमय मैं होता...
अन्त रहित मैं अनन्त होता...'कनक' स्वयं पूर्ण अमृत होता...(3)...

स्वभाव बिन सुख कहाँ?!

(परम सुख के परम कारण)

(चालः मेरो मन अनन्त सुख कहाँ पावे....)

मेरा भाव स्वरूप, बिन कहाँ सुख पावे।
मेरा स्वरूप तो ज्ञानानन्दमय, तन्मय रूप होय।।

भाव अभाव विभाव रूप से, मुझमें तीन रूप होय।
मेरा स्वरूप है मेरा भाव, अन्य से अभावमय होय।।
राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध-लोभ, ईर्ष्यादि विकारमय होय।
अभाव-विभाव में मेरा न सुख होता, वे सब पर रूप होय।।

कर्म-नोकर्म व तन-मन इन्द्रिय, धन-जन यश जो होय।
ये सब है पर मुझ में अभाव, इनसे सुख न होय।।
इसी हेतु ही सभी तीर्थंकर, राज्य वैभव करे त्याग।
अभाव-विभाव से परे वे होकर, करते हैं सुख भोग।।

उनसे मुझे तो शिक्षा भी मिले, होता आशिंक अनुभव।
स्वभाव सुख हेतु ''कनकनन्दी'' त्यागे है अभाव-विभाव।।

उत्तम स्वात्म चिंता तो परचिंता अधमाधमा

(लयः शत-शत वंदन....., सायोनारा....)

परम विकास हेतु स्वयं को जानो, गुण बढ़ाओं तथा दुर्गुण त्यागो।
आत्मविश्वास सह चिंतन करो, पर प्रपंच को सर्वथा त्यागो।।स्थायी।।
आत्म ज्ञान ध्यान व विशुद्धि से, पर परिणति के परित्याग से।
संकल्प-विकल्प संक्लेश नशते, आत्मिक गुण अनुभव होते।।
इसी से समता शांति अनुभव होती, आध्यात्मिक संतुष्टी प्रगट होती।
ज्ञानानंद का भी अनुभव होता, मानव जीवन भी सफल होता।।
पर प्रपंच से राग द्वेष होते, ईर्ष्या घृणा वैर भाव होते।
संकल्प विकल्प व संक्लेश होते, कलह विद्वेष व कष्ट होते।।
अस्थिर जल में प्रतिबिम्ब न दिखे, पर परिणति से आत्मा न दिखे।
गंदा जल में प्रतिबिम्ब न दिखे, अशुद्ध भाव से भी आत्मा न दिखे।।
ऐसी परिणति जब न होती संभव, मैत्री प्रमोद कारूण्य हो स्वभाव।
विश्व कल्याण की हो भावना, न हो संकीर्ण-स्वार्थ-भावना।।
इसी रीति से बनते केवली सिद्ध, इसी रीति से बनता है आत्म विशुद्ध।
यह है परम-आध्यात्मिक रहस्य, 'कनकनन्दी' का परम लक्ष्य।।

आगम एंव आगमनिष्ठ कविता

मैं ही मेरे परमद्रव्य-सत्य-धर्म-तीर्थ हूँ

(चालः कसमें वादे....)

मैं ही मेरा परम द्रव्य हूँ, मैं ही मेरा परम सत्य।
मैं ही मेरा परम धर्म हूँ, मैं ही मेरा परम तीर्थ।।
मैं हू जीव द्रव्य होने से, मेरे गुण ही मुझ में स्थित।
मेरी पर्याय भी मुझ में, अतः मेरा मैं ही सत्य।।
'सद्द्रव्य' लक्षण होने से, मेरा मैं हूँ द्रव्य (व) सत्य।
'वस्तुस्वभाव' धर्म होने से, मेरा धर्म भी मुझ में स्थित।।
स्वधर्म ही है परम 'तीर्थ', जिससे संसार तिरा जाता।
अन्य सभी द्रव्य व सत्य, तीर्थ भी सहयोगी/(निमित्त) होते।।

मेरी गति व स्थिति हेतु, धर्माधर्म सहयोगी (भी) होते,
आकाश व काल द्रव्य भी, अवगाहन परिणमन के हेतु (होते)।।
पुद्गल द्रव्य मेरे हेतु, संसार के कारण भी होते।
दोनों के (सं) योग-वियोग से, बंध तथा ही मोक्ष होते।।
आस्रव-बंध (व) संवर-निर्जरा, मोक्ष पुण्य व पाप पदार्थ।
जन्म-मरण व सुख-दुःख भी, दोनों के संयोग-वियोग (मात्र)।।

संदर्भः-संथारा (सल्लेखना, समाधि) के विरूद्ध में लोकहित याचिक दायर है उसके प्रतिकार हेतु-

श्रीमान्/श्रीमति.....

मेरा मंगलमय धर्मरक्षार्थे शुभाशीर्वाद।

जैन धर्म के सथारे (सल्लेखना, समाधि मरण) को आत्महत्या, सतीप्रथा के समकक्ष मानकर दिलिप सोनी ने एक जनहित याचिका राजस्थान हाइकोर्ट में दायर किया है, निखिल सोनी की ओर से वकालत करने वाले एडवोकेट माधव मिश्रा है। जैन धर्म जैसे वस्तु स्वरूप, अनेकान्तात्मक, उदारवादी, सहिष्णु, अंहिसा प्रधान, सर्वजीव हितकारी, सर्वजीव सुखकारी, वैश्विक, वैज्ञानिक धर्म के ऊपर ऐसा अनैतिक-अवैधानिक, पक्षपात पूर्ण अज्ञान से युक्त, आक्षेपात्मक प्रहार वस्तुतः उपर्युक्त गुणों के ऊपर ही प्रहार है। अतः सत्य, अंहिसा, उदारता, आध्यात्मिक-आत्मसाधन स्वरूप जैन धर्म की/सत्य धर्म की रक्षा के लिए मेरा सकल जैन समाज (दिगम्बर श्वेताम्बर जैन) तथा सत्य ग्राही उदारमना विश्व मानव को आह्वान है कि आप सब स्व-स्व शक्ति-भक्ति के अनुसार सत्य, न्याय के पथ पर चलते हुए इसका निरसन करे एवं संगठित होकर भी व्यापक रूप से प्रतिरोध एवं परिशोधन करे। हम भी ससंघ इसका यथायोग्य निरसन, प्रतिरोध, परिशोधन-प्रवचन, लेखन, साहित्य आदि के माध्यम से कर रहे हैं। हमें भी आप लोग यथायोग्य सम्पूर्ण सहयोग, स्वेच्छा से, सह्यदय से, मन-वचन-काय, समय, श्रम, साधन से करे। जिसके माध्यम से हम जैन धर्म की रक्षा के साथ-साथ आध्यात्मिक संस्कृति की रक्षा कर सके। इसके साथ-साथ इसके माध्यम से जैन एकता के लिए भूमिका बनेगी एवं जैन एकता का प्रायोगिक रूप राष्ट्र एवं विश्व

स्तर पर होगा जो कि वर्तमान जैन धर्म की, राष्ट्र की, विश्व की आवश्यकता है। सूचना को प्राप्त करते ही आप लोगों की सकारात्मक प्रतिक्रिया एवं सहयोगात्मक पुरुषार्थ की भावना सहित। **आ. कनकनन्दी प्र.सं. - 2007**

समाधि-मरण (संथारा) परम-अहिंसा है न कि आत्महत्या-सतीप्रथा सम निकृष्ट हिंसा

जो कुछ बाहर से देखाई देता है यथार्थ उससे भिन्न होता है। जैसा कि आकाश का नीला दिखाई देना, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि का आकार छोटा दिखाई देना यथार्थ नहीं है। कृषि के समय कृषक द्वारा जीवों का मरण तथा मछुआरा द्वारा जीवों को मारा जाना, राष्ट्र की रक्षा के लिए सैनिक द्वारा आक्रान्ताओं का मारा जाना तथा आतंकवादी, डाकू, लूटेरे द्वारा निर्दोष व्यक्ति को मारा जाना, न्यायधीश द्वारा दोषी को न्यायोचित दण्ड देना, माता-पिता-गुरुजन द्वारा सुधार के लिए संतान एवं शिष्यों को प्रायश्चित्त देना, प्रताडित करना तथा सज्जनों के साथ दुर्व्यवहार करना समान नहीं है। वेश्यागमन, परस्त्री आलिंगन तथा माता-पिता का वाात्सल्यमय दुलार, सहलाना एक समान नहीं है। उपर्युक्त उदाहरणों में बाह्य क्रिया में कुछ समानता होने पर भी भाव, उद्देश्य, परिणाम में महान् अन्तर है या पूर्ण विपरीत है। इसी प्रकार आत्म हत्या, सतीप्रथा, पशु-पक्षी-मनुष्य की हत्या या धर्म के नाम पर बलि चढ़ाना तथा समाधि-मरण (सल्लेखना, संथारा) में भी जान लेना चाहिए। अन्तर को जानने के लिए हिंसा एवं अहिंसा का व्यापक, सूक्ष्म यथार्थ परक स्वरूप जानना प्राथमिक विधेय है। यथा-

हिंसा का विश्वस्वरूप

आत्म-परिणाम हिंसन हेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत्।
अनृत-वचनादि-केवलमुदाह्यतं शिष्य-बोधाय।।42

जिससे आत्मपरिणामों का हिंसन/हनन होता है वह सब हिंसा ही है। असत्य आदि पापों का कथन प्राथमिक कम बुद्धि वाले शिष्यों को समझाने के लिए उदाहरण के रूप में बताया गया है। प्रमाद से युक्त कषाय से संयुक्त जीव के परिणाम ही हिंसा के लिये कारण होते हैं। असत्य आदि पाप हिंसा की ही अवस्थान्तर है। तथापि शिष्यों को समझाने के लिये असत्य आदि पापों का भी कथन किया जाता है।

पन्द्रह प्रकार प्रमादों से आत्मा के परिणाम कलषित होते हैं, मलिन होते है इसलिये यह प्रमाद ही हिंसा है।

यत्खलुकषाय-योगात् प्राणानां द्रव्य भावरूपाणां।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चित भवति सा हिंसा।।43

निश्चय से कषाय के योग से द्रव्य भाव रूप प्राणों का हनन होना हिंसा है। निश्चय से कषाय के योग से अर्थात् क्रोध, मान आदि चार कषाय, हास्यादि नोकषाय के योग से इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास, शरीर आदि द्रव्य प्राण तथा ज्ञान आदि भाव प्राणों का हनन करना या उन्हें पीडा देना हिंसा है। इन द्रव्य एवं भाव प्राणों का प्रमत्त योग से व्यपरोपण करना, विनाश करना, वियोजन करना निश्चय से हिंसा है।

पाँच इन्द्रिय प्राण, मन, वचन, काय, रूपी तीन बल प्राण, श्वासोच्छ्वास एवं आयु मिलाकर के दस प्राण होते हैं। यथा योग्य **दसों प्राण का वियोग करना या उन्हें क्षति पहुँचाना हिंसा है।** यहाँ पर परिणाम को प्राधान्यता दी गई है।

अहिंसा और हिंसा का भावात्मक लक्षण

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पतिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।।44।।

राग-द्वेष आदि दूषित परिणाम का आत्मा में उत्पन्न नहीं होना निश्चय से अहिंसा है। इसी ही राग-द्वेष आदि दूषित परिणामों का उत्पन्न होना जिनागम में संक्षिप्त से हिंसा कहा है। जिनागम का संक्षेप या सार यह है कि अप्रयत्न रूप से आचरण करना हिंसा है एवं प्रयत्न पूर्वक (विवेक एवं पवित्र भाव) आचरण करना अहिंसा है।

प्राणघात से ही यत्नाचारी हिंसक नहीं

युक्ताचरणस्य सतो रागोद्यावेशमंतेरणापि।
न हि भवतिजातु हिंसा, प्राणव्यपरोपणादेव।।45

जो प्रयत्न आचरण ये युक्त है तथा रागादि आवेश से रहित है उससे हिंसा नहीं होती है। युक्त आचरण से सहित मुनीश्वरों के रागादि भावों के आवेश के बिना कदाचित् प्राण व्यपरोपण होने पर भी हिंसा नहीं होती है।

अयत्नाचारी प्राणघात के बिना भी हिंसक

व्युत्थानावस्थायां, रागदिनां वश प्रवृत्तानाम्।

म्रियतां जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुवं हिंसा।।46

राग आदि परिणाम के वशीभूत जीव प्रमाद अवस्था में रहते हुए दूसरे जीव मरे या नहीं मरे अवश्य हिंसक होता है। आचार्य श्री ने इस प्रकरण में कहा कि राग आदि परिणाम से वशीभूत जीवों के तथा प्रमाद से सहित जीवों के आगे-आगे हिंसा दौडती रहती है। इसका रहस्य यह है कि वह अवश्यमेव हिंसक होता है अर्थात् त्रस-स्थावर जीवों के प्राणों का हनन करने वाले या नहीं करने वालें भी प्रमादी जीव अवश्य ही हिंसक होते है।

आत्मघाती दूसरों के प्राणघात के बिना भी हिंसक

यस्मात्कषायः सन् हन्त्यात्मा-प्रथममात्मनाऽऽत्मानम्।

पश्चाज्जायेते न वा हिंसा प्राण्यंतराणां तु।।47

कषाय से युक्त जीव सर्व प्रथम स्व आत्म स्वरूप की हिंसा करता है। पश्चात् अन्यजीवों की हिंसा हो या नहीं हो सकषाय जीव कषाय के वशीभूत होकर बहिरात्मा होकर अन्तरात्मा का हनन करता है। आत्मवध होने के पश्चात् अन्य जीवों का वध हो भी सकता है नहीं भी हो सकता है।

प्रमाद योग में नियम से हिंसा होती

हिंसायामविरमणं हिसापरिणमनमपि भवति हिंसा।

तस्मात् प्रमत्तयोगे प्राणं व्यपरोपणं नित्यम्।।48

हिंसा से प्रतिज्ञापूर्वक विरक्त नहीं होना भी हिंसा ही है। जीव वध से अविरमण हिंसा होती है। हिंसा का परिणाम भी हिंसा ही है। मानसिक हिंसात्मक परिणाम ही हिंसा है। इसलिए प्रमत्त योग से प्राण व्यपरोपण (भाव हिंसा) अवश्य होता है।

विकहा तहा कसाया इंदियणिद्दा तहेव पणया य।

चदु चदु पणमेगेगं होंति पमादा हु पण्ण रसा।। (गो.सार)

चार प्रकार के विकथा, (स्त्री कथा, चोर कथा, भोजन कथा, राजनीति कथा) चार प्रकारे के कषाय, (क्रोध, मान, माया, लोभ) पाँच प्रकार की इन्द्रियाँ, (स्पर्शन रसना, घ्राण, चक्षु कर्ण विषय की आसक्ति) एक निद्रा तथा एक प्रणय (भोगासक्ति) रूप से प्रमाद पंद्रह प्रकार के हैं।

हिंसा के निमित्तों को हटाना चाहिये

सूक्ष्माऽपि न खलु हिंसा परवस्तु-निबंधना भवति पुंसः।

हिंसाऽऽयतन-निवृत्तिः परिणाम-विशुद्धये तदपि कार्या।।49

पर वस्तु के सम्बन्ध से मनुष्य को सूक्ष्म भी हिंसा नहीं लगती है। निश्चय से पर पदार्थ के कारण सूक्ष्म जीव बध का पाप भी जीव को नहीं लगता है। हिंसा आत्म परिणाम से जनित होती है इसलिये हिंसा आत्मनिष्ठ है। इसलिये आत्म परिणाम की विशुद्धि के लिये हिंसा के आयतन स्वरूप छुरी अस्त्र-शस्त्र, सूक्ष्म जीवों से युक्त स्थान का भी त्याग करना चाहिये। अस्त्रादि धारण करने से आत्मस्वभाव में मलीनता आती है। अतः शस्त्रों के समूह को त्याग करके यत्नपूर्वक विचरण करने से आत्म परिणाम में निर्मलता आती है।

अनिश्चयज्ञ निश्चय के आश्रय से चारित्र घाती

निश्चयमुबुद्ध्यमानो यो निश्चयतस्तमेव संश्रयते।

नाशयति करण चरणं स बहिः करणालसो बालः।।50

जो निश्चय को नहीं जानकर निश्चय से उसका ही आश्रय लेता है ऐसा मूर्ख निश्चय से क्रिया रूप चारित्र को अर्थात् व्यवहार चारित्र का नाश कर देता है। आचार्य श्री ने उसे मूर्ख, आलसी कहा है जो निश्चय व्यवहारात्मक मोक्षमार्ग को नहीं जानकर बाह्य चारित्र का पालन करने में प्रमादी होकर एकान्ततः निश्चय का ही आश्रय लेता है, मानना है। ऐसा व्यक्ति श्रावक चारित्र एंव मुनि रूपी व्यवहार चारित्र का नाश करता है, लोप करता है।

अहिंसा के लिये सल्लेखना

इयमेकैव समर्था धर्मत्वं मया समं नेतुम्।

सततमिति भावनीया, पश्चिम-सल्लेखना भक्त्या।।75

अपने धर्म तत्व को अपने साथ एकीकरण करके पर भव में ले जाने के लिये यह सल्लेखना ही निरन्तर समर्थ है। इस प्रकार विचार करके भक्ति से निष्कपट रूप से जीवन के अन्तिम समय में सल्लेखना की भावना भानी चाहिये। मरण के समय में शरीर एवं कषाय को क्षीण करना सल्लेखना है।

सल्लेखना का पालन

मरणांतेऽवश्यमंह विधिना सल्लेखनां करिष्यामि।

इति भावनया परिणतो, नागतमपि पालयेदिदं शीलम्।।76

स्वकीय-परिणाम से पूर्व जन्म में से उपार्जित आयु, इन्द्रिय बल का विनाश कुछ कारण से होता है उसको मरण कहते हैं। मरण को यहाँ पर अंत कहा गया है। उस मरण के समय में शरीर, कषाय को क्षीण करना सल्लेखना कहते हैं। शरीर को क्षीण करना बाह्य सल्लेखना है। कषाय को क्षीण करना अभ्यन्तर सल्लेखना है। मरण के अंत में अर्थात् तद्भव मरण मैं शास्त्रोक्त विधि विधान से निष्कपट रूप से सल्लेखना निश्चय से करूँगा। इसी प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से भावना से सहित पुरुष को भी आगामी काल संबंधी भी इस शील का पालन होता है। जो ऐसी भावना भाता है उसकी सल्लेखना होती है।

सल्लेखना आत्महत्या क्यों नही?

मरणेऽवश्यं भाविनि, कषाय सल्लेखना तनूकरण मात्रे।

रागादिमंतरेण, व्याप्रियमाणस्य नाऽऽत्मघातोऽस्ति।।77

प्रश्न-स्वयमेव सल्लेखना करके प्राण त्याग करने से स्वकीय आत्मबन्ध होगा जो हिंसा है?

उत्तर-उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर आचार्य देते हैं कि अवश्यभावी मरण में राग, द्वेष, मद, मोहादि के बिना की गई सल्लेखना से पुरुष का आत्मघात नहीं हैं क्योंकि सल्लेखना में कषाय को क्षीण किया जाता है और जहाँ कषाय आवेश नहीं है वहाँ आत्महत्या नहीं होती। तत्वार्थ सूत्र में कहा है कि प्रमत्त योग से प्राण का व्यपरोपण करना हिंसा है। जो पुरुष शुद्ध अन्तः करण से सल्लेखना करता है उसका प्रमाद का योग नहीं होता है। सल्लेखना युक्त पुरुष राग, द्वेष, काम, मोह, क्रोधादि में प्रवर्तन नहीं करता है। इसलिए उसका आत्म वध नहीं है। रागादि सहित का अशुभ भाव में प्रवर्तन करने वालों का ही आत्मघात होता है अन्य के नहीं। इसलिए सल्लेखना की भावना करनी चाहिए।

आत्मघाती कौन?

या हि कषायऽऽविष्टः, कुभक-जल-धूमकेतु-विष-शस्त्रैः।

व्यपरोपयति प्राणान्, न तस्य स्यार्त्सयमात्मवधः।।178

रागादि सद्भाव से अशुभ भाव से प्राण विमोचन करने पर सल्लेखना नहीं होती है, इस प्रकार दिग्दर्शन करते हैं।

निश्चय से कषाय से आविष्ट पुरुष कुम्भक, श्वास निरोध, जल, अग्नि, विष,

शस्त्र आदि के द्वारा प्राणों को, इन्द्रियों को नाश करता है उस पुरुष के लिए आत्मवध होता है। राग-द्वेष, मोहादि से युक्त पुरुष श्वास रोध से, विषभक्षण से, कूप पतन से, अग्नि प्रवेश से, पर्वत से गिरकर, शस्त्रादि के प्रयोग से आत्म का हनन करता है वह पुरुष आत्मघात पातक को प्राप्त होता है। उसकी सल्लेखना नहीं होती है।

सल्लेखना अहिंसा भाव

नीयन्तेऽत्र कषायाः हिंसाया हेतवो यतस्तनुताम्।

सल्लेखनामपि ततः प्रादुरहिंसा प्रसिद्धयर्थम्।।79

जिसके कारण से इस सल्लेखना में मुनिश्वरों के द्वारा हिंसा के कारणभूत क्रोधादि कषायों को मन्द किया जाता है इसीलिये सल्लेखना को मुनियों ने अहिंसा की प्रसिद्धि के लिए कहा। सल्लेखना भी दया के लिए कारण है। वसुनन्दी आचार्य ने कहा भी है-

आगम में रागादि की अनुत्पत्ति को अहिंसा कहा है और उसकी उत्पत्ति को ही जिनेन्द्र भगवान ने हिंसा कहा है। सल्लेखना में प्रवर्तमान पुरुष अवश्य ही मरण आगत होने पर निज आत्म गुण की विराधना नहीं करता हुआ धीरे-धीरे देह को त्याग करता है, जिस प्रकार आत्मगुणों का विनाश नहीं हो तथा कषाय का विनाश हो उसी प्रकार प्रयत्न करता है। किस प्रकार जो स्वकीय आत्मघात करता है उसकी सल्लेखना हो सकती है? जो सल्लेखना करता है उसका आत्मघातीरूपी पातक नहीं होता हैं।

व्रतधारी को स्वयं मोक्ष मिलता

इति यो व्रत-रक्षार्थं सतत पालयति सकल-शीलानि।

वरयति पतिं वेरण स्वयमेव तमुत्सका शिव-पदश्री।।180

इस प्रकार जो पुरुष सतत अहिंसादि व्रत की रक्षा के लिये समस्त सप्तशील को पालन करता तथा सल्लेखना को करता है वह शिव पदवीश्री को वरण करता है। जिस प्रकार पति इच्छुक कन्या स्वेच्छा से पति को वरण करती है उसी प्रकार शिव श्री/मोक्ष लक्ष्मी उत्कंठित होकर स्वयमेव व्रत पालक पुरुषों का आदर से वरण करती है।

उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि समाधि-मरण परम अहिंसा है; क्योंकि अवश्यंभावी मरण (जिससे मरण को किसी प्रकार से रोका नहीं जा सकता है, टाला नहीं जा सकता है) काल में स्व-पर को किसी भी प्रकार के कष्ट दिये बिना समता पूर्वक मरण को वीरता से वरण किया जाता है। प्राण घातक रोग आदि के अचानक

आक्रमण आदि के कारण तो तत्काल (कुछ समयावधि में) समाधि ग्रहण का विधान है अन्यथा क्रमिक रूप से समाधि की साधना 12 वर्षों में की जाती है। समाधि मरण को सल्लेखना (सम्यक्+लेखन) भी कहा जाता है क्योंकि सम्यक् रूप से कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ आदि) तथा शरीर को कृश (क्षीण) किया जाता है। मुख्यतः कषाय के क्षीण के साथ-साथ स्वयमेव शरीर भी क्षीण होता है। अतिवृद्ध, अतिरोग की अवस्था में शरीर क्षीण/दुर्बल होने के कारण चलना-फिरना, उठना-बैठना आदि करने में पीडा होती है, रोग बढ जाता है। इसलिए एक योग्य स्थान में एक संथारा (शयन के योग्य चटाई आदि) में समाधि साधक अध्यात्मिक साधना करते हैं। अतिवृद्ध, अतिरोगी अवस्था में गरिष्ठ-अति भोजन करने से अपच आदि के कारण रोग में वृद्धि की संभावना रहती है। इसलिए सुपाच्य-अल्पाहार का विधान है। इस बाह्य (गौण) कारण के साथ-साथ अन्तरंग कारण इन सब का यह है कि स्व-पर को, सूक्ष्म से स्थूल जीवों को बाधा नहीं पहुँचे, भाव में निर्मलता आवे, मरण में पीडा न हो। आवश्यकतानुसार नियम की मर्यादा में मरण के अन्तिम दिन तक औषधि-पानी आदि के भी प्रयोग का विधान है। जैन धर्म में अहिंसा, सत्य, अनेकान्त, उदारता, कर्म सिद्धान्त के साथ-साथ 1. आहार दान 2. औषधि दान 3. वसतिका (निवास गृह, धर्मशाला) दान 4. अभय दान (दूसरों की रक्षा) और 5. दया दत्ती (करूणा से रोगी, गरीब आदि की सहायता) का जब विधान है तथा आत्मा के मलीन भाव को ही महान् आत्म हत्या माना गया तब कैसे कोई प्रवृद्ध/ जागरुक वरिष्ठ नागरिक से लेकर साधु-संत तक आत्मा हत्या कर सकते है? भावात्मक आत्महत्या को जब जैन धर्म में महान् हिंसा/पाप मान कर उससे दूर रहने का विधान है, तब स्वआत्महत्या के साथ-साथ स्व-शरीर हत्या एक सच्चा जैन कैसे कर सकता है? जब सविंधान के अनुसार 18(21) वर्ष का व्यक्ति स्व-विवेक से अपना धर्म, कर्त्तव्य का चयन कर सकता है, तब क्या एक वरिष्ठ व्यक्ति (वृद्ध-विवेकी-धर्मात्मा, अहिंसक) पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक आदि समस्याओं के बिना स्व-विवेक के रहते हुए स्वेच्छा से आध्यात्मिक उन्नति के लिए मरण को वरण करता है तो क्या वह आत्महत्या के लिए करता है? स्व-पर सम्पूर्ण जीवों से तीन काल सम्बन्धी क्षमा प्रदान एंव क्षमा याचना पूर्वक मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमत से सम्पूर्ण हिंसा से निवृत्ति होने के लिए समाधि को स्वीकार किया जाता है तो समाधि आत्महत्या या सती प्रथा के समान अपराध या सामाजिक बुराई अथवा कानूनी असंवैधानिक कैसे हो सकता है?

भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक नागरिक को धर्म और उपासना की स्वतंत्रता का अधिकार है। यथा-

WE, THE PEOPLE OF INDIA, having solemnly resolved to constitute into a (SOVEREIGN SOCIALIST SECULAR DEMOCRATIC REPUBLIC and to secure to all its citizens;

हम भारत के लोग, भारत को एक (सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न समाजवादी पंथ निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य) बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों कोः-

JUSTICE, Social economic and political, LIBERTIY of thought, expression, beleif, faith and worship, EQUALITY of status and of opportunity, and to promote among them all FRATERNITY assuring the dignity of the individual and the [unity and integrity of the Nation];

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और (राष्ट्र की एकता और अखण्डता) सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढाने के लिए

IN OUR CONSTITUTION ASSEMBLY this twentysixth day of November, 1949 do HEREBY ADOPT, ENACT AND GIVE TO OURSELVES THIS CONSTITUTION.

दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

समाधि मरणं एवं आत्महत्या में और भी अनेक अन्तर निम्न प्रकार से हैं। समाधि एक धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रकिया है, जबकि आत्म हत्या एक भौतिक/शरीरिक क्रिया है। समाधि सम्पूर्ण रूप से स्वैच्छिक है तो आत्म हत्या के पीछे कोई न कोई विवशता या बध्यता होती हैं। समाधि का प्रमुख लक्ष्य आत्म-कल्याण, मोक्ष प्राप्ति होता है तो आत्महत्या का मुख्य कारण तात्कालीन कष्टों से पीछा छुडाना या दुःखों से पलायनवादी होना है। समाधि में अवश्यंभावी मरण के समय में भोजन-पानी का त्याग शक्ति के अनुसार स्वैच्छिक होता है तो आत्महत्या किसी भी विष, अस्त्र, शस्त्र, अग्नि, पानी, श्वासरोध, फांसी, यान-वाहन, उच्च स्थान से गिरना आदि से की जा सकती है। समाधि में मृत्यु एकदम नहीं होती है। इसकी प्रकिया 12 वर्ष तक शनैः

शनैः होती है। यम समाधि को त्यागकर सामान्य जीवन भी जीया जाता है जब मरण के कारण रूप रोग, विपत्ति, हिंस्रपशु आक्रमण, विषाक्त जीवों के द्वारा दंश, दूसरों के द्वारा दंश, दूसरों के द्वारा विष पान आदि कारक दूर हो जाते हैं परन्तु आत्महत्या/सतीदाह एकदम होता है। समाधि का भाव स्वयं के निर्मल परिणाम से उत्पन्न होता है जबकि आत्महत्या का भाव एक आवेग, आवेश, विवशता, उत्तेजना, संक्लेश, पीडा आदि का परिणाम होता है। समाधि जीवन के अन्त में की जाती है जब सभी भोगों, वासना, इच्छा पूर्ति के कार्य करने के पश्चात् इनसे मुक्ति पाने का भाव उत्पन्न होता हैं।

मेडिकल साइन्स के अनुसार भी जिनके प्राकृतिक रूप से मृत्यु की प्रोसेज प्रारम्भ हो चुकी है, जहाँ पर मृत्यु होना अवश्यंभावी है, यदि कोई व्यक्ति टार्मिनली इल है अर्थात् उसके जीवन का अन्त अवश्यंभावी है यदि ऐसे व्यक्ति की ब्रेन डेड हो चुकी हो तो उसके लाइफ सपोर्ट को हटाया जा सकता है। हॉलैंड विश्व का पहला देश है जहाँ व्यक्ति को यह कानूनी अधिकार प्राप्त है कि वह इच्छा मृत्यु प्राप्त कर सकता है। आस्ट्रेलिया आदि कुछ देश में भी ऐसा कानून है। **वैदिक धर्मानुसार श्रीराम ने भी जल समाधि ली थी। इसी प्रकार विवेकानन्द ने भी। राष्ट्रसंत विनोबा भावे तो जैन धर्म की विधि के अनुसार समाधि-मरण को वरण किया था। वैदिक धर्म ग्रन्थ मनुस्मृति में भी विस्तार से संन्यास ग्रहण एवं सन्यास मरण का जो वर्णन है उस की अधिकांश प्रकिया जैन समाधि-मरण प्रकिया से समानता रखती है। विस्तृत ज्ञान के लिए समाधि सम्बन्धी मेरे अन्य लेख एवं साहित्य का अध्ययन करें।** विश्वकल्याण के लिए वैदिक ऋषि दधिची ने स्वेच्छा से अन्न जल त्याग करके शरीर त्याग किया था। जिनकी अस्थि से इन्द्र ने ब्रज तैयार करके वृत्रासुर को मारा था। महात्मा बुद्ध ने भी अन्तिम में समाधि धारण पूर्वक परिनिर्माण प्राप्त किया था। वैदिक, बौद्ध आदि धार्मिक परम्परा में यह प्राचीन आध्यात्मिक समाधि-मरण प्रकिया सर्व साधारण में बहु प्रचलित नहीं होने के कारण तथा विदेश में प्रायः यह प्रथा नहीं होने के कारण वर्तमान में भारत में भी इससे सर्व साधारण जन अनभिज्ञ है। परन्तु जैन धर्म में अति प्राचीन काल से लाखों-करोडों वर्षों से यह प्रथा है और अभी भी प्रचलित है। इस दृष्टि से यह प्रकिया जैन स्वीय विधि (पर्सनल लॉ) है, और उनके अपने कस्टम (रुढि, परम्परा) है। आत्महत्या एक इम्पलिसव प्रकिया है जबकि समाधि मृत्यु-महोत्सव, वीर मरण है जिससे समाज में ज्ञान, वैराग्य त्याग, आध्यात्मिकता, निस्पृहता, अनासक्त आध्यात्मिक-शहीद का पाठ पढाने का पाठ

पढाने वाला होने से लोक-हितकारी है। अतः समाधि-मरण सामाजिक व्यवस्था के अनुकूल है न कि विरूद्ध है। क्योंकि इससे समाज को शिक्षा मिलती है, प्ररेणा मिलती है न कि समाज में आंतक, अव्यवस्था अन्धविश्वास फैलता है। जैन धर्म में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता है कि कोई स्वस्थ्य, कम आयु वाला व्यक्ति विवशता या आवेश में आकर उपर्युक्त समाधि मरण के कारण बिना समाधि मरण किया हो। इतना ही नहीं, इसके दुष्प्रभाव से अन्य कोई धर्मावलम्बी भी कम आयु में स्वस्थ्य रहते हुए समाधि मरण किया हो ऐसा भी नहीं है। जिस प्रकार कि सिनेमा, टी.वी. कार्यक्रम के अन्धानुकरण से अनेक बच्चों से लेकर बडे तक भी हत्या, बलात्कार, चोरी, डकैती, आत्महत्या, फैशन, व्यसन करते हैं। ऐसा कुछ भी दुष्प्रभाव समाधि-मरण से न हुआ है, न हो रहा है, न होने की संभावना है। क्योंकि आध्यात्मिक **प्रकिया सामान्य जन के लिए दुरुह, कष्टसाध्य, अनजान, अरूचिकर, अप्रिय, अनावश्यक, व्यर्थ कार्य है। उन्हें तो सत्ता, सम्पत्ति, भोग, राग-द्वेष, मोह, ईर्ष्या, लोभ, प्रसिद्धि, लडाई, झगडा, परनिन्दा, पर-अपकार, फैशन-व्यसन, दिखावा, शोषण, भ्रष्टाचार, खाओ-पीओ-मजाकर चाहिए।** अधिकांश व्यक्ति भगत सिंह, सुभाषचन्द्र बोस, राणाप्रताप आदि के समान स्वार्थ त्यागी, बलीदानी नहीं बनना चाहते हैं परन्तु टाटा, बिरला, नट-नटी, नेता-खलनेता आदि बनना चाहते हैं। क्या जो दशभक्त, क्रान्तिकारी, त्यागीवीरों ने देश हित के लिए कष्ट सहा, फाँसी पर चढे, स्वयं के ऊपर गोली चलाकर वीरगति को प्राप्त हुए उन्हें कायरों के समान जघन्य अपराध स्वरूप आत्महत्या करने वाला कहा जायेगा?

धर्म के नाम पर, देवी-देवता, ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए या किसी प्रकार मान्यता अथवा संकट दूर करने के लिए जो पशु-पक्षी, नर, स्वपरिजन से लेकर स्व-बलि चढाते हैं वह भी सब हिंसा है, जघन्य अपराध है, मानव जाति के लिए कलंक है, पर्यावरण को पारस्थितिकी तंत्र को क्षति पहुँचाने वाला है। इसी प्रकार मांस, चमडा, हड्डी, शारीरिक किसी भी अवयव के लिए, औषधि, प्रसाधन सामग्री के लिए ये धन कमाने के लिए जो पशु-पक्षी आदि की हत्या सामान्य व्यक्ति से लेकर सरकार कानून बनाकर करती है, करवाती है लाइसेन्स देती है, मांस निर्यात करती है वह सब हत्या है, प्राकृतिक न्याय के अनुसार घोर अवैधानिक अपराध है तथा पर्यावरण प्रदूषक, एवं पारस्थितिकी तंत्र के लिए हानि कारक होने के वैश्विक अपराध है। इसी प्रकार गर्भपात, दहेजहत्या फिरोति के लिए अपहरण, शोषण, भ्रष्टाचार, अन्याय-

अत्याचार, अव्यवस्था, चोरी, मिलावट, कर्तव्य चोरी, अनुशासनहीनता, फैशन-व्यसन, अस्वच्छता, उत्श्रृंखलता, शीघ्र समय पर न्याय नहीं मिलना, धर्मान्धता कट्टरता, आतंकवाद, राजनैतिक भ्रष्टाचार आदि अपराध है, समाज व राष्ट्र के लिए अहितकर है। अतः इन सब को जन जागृति, लोकहित याचिका के द्वारा, शिक्षा, संस्कार, सदाचार, सरकार, और कानून द्वारा रोकना चाहिए, परिशोधन करना चाहिए। इन सब के लिए तो समय, साधन, ज्ञान, विवेक साहस, पुरुषार्थ नहीं लगाते हैं परन्तु अनावश्यक कार्य में इन सब का दुरूपयोग करते हैं। आओ! हम सब मिलकर पंथ-मत-जाति, राजनीति के भेद-भाव को त्यागकर आत्म विकास से लेकर विश्व विकास के लिए समग्रता से स्वेच्छा से सतत प्रयास करें।

व्रती को सल्लेखना धारण करने का उपदेश

मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता।(22)

(The house holder is also) the observer in the last moment of his life, of the process of सल्लेखना peaceful death which is characterised by non attachment to the world and by a suppression of the passions.

तथा वह मारणान्तिक सल्लेखना का प्रीतिपूर्वक सेवन करने वाला होता है।

स्वकीय परिणामों से गृहीत आयु, इन्द्रियाँ, बलादि प्राणों का कारणवश क्षय होने को मरण कहते हैं।

अंत का ग्रहण तद्भव मरण की प्रतिपत्ति के लिए है। मरण दो प्रकार का है-नित्य मरण और तद्भव मरण। प्रतिक्षण स्वकीय आयु की जो निवृत्ति होती है नाश होता है अर्थात् समय-समय में आयु के निषेक जो उदय में आकर नष्ट होते हैं वह नित्य मरण हैं। भवान्तर प्राप्ति के अनंतर उपश्लिष्ट पूर्व पर्याय का नाश होना उद्भव मरण कहलाता है। इस सूत्र में अंत शब्द का ग्रहण तद्भव मरण को ग्रहण करने के लिये है। मरण अंतः मरणान्तः और मरणान्त जिसका प्रयोजन हैं-वह मारणान्तिक है।

सल्लेखना- अर्थात् भली प्रकार काय और कषाय को कृश करना। लिख् धातु से 'णि' प्रत्यय करने से लेखना शब्द बनता है, उसका अर्थ तनूकरण यानी कृश करना है। बाह्य शरीर और आभ्यन्तर कषायों के कारणों को निवृत्ति पूर्वक क्रमशः

भली प्रकार क्षीण करना सल्लेखना है। उस मारणान्तिक सल्लेखना को प्रीतिपूर्वक सेवन करना, धारण करना। इसको सेवन करने वाले गृहस्थ श्रावक होता है।

'जोषिता' शब्द से यहाँ प्रीतिपूर्वक सेवन करना अर्थ विवक्षित है, अंतरंग प्रीति के बिना जबर्दस्ती सल्लेखना नहीं कराई जाती, जब आत्मा सल्लेखना करने में अपना परमहित समझता है, तभी स्वयं प्रेमपूर्वक उसे धारण करता है।

सल्लेखना से आत्महत्या-प्रमाद के योग से प्राण व्यपरोपण को हिंसा कहते हैं। परन्तु सल्लेखना मरण को आत्मवध नहीं कह सकते।

रागादि का अभाव होने से प्रमाद नहीं है। क्योंकि राग-द्वेष और मोह आदि से कलुषित व्यक्ति जब विष, शस्त्र आदि से अभिप्रायपूर्वक अपना घात करता है तब आत्मवध का दोष लगता है, परन्तु सल्लेखना धारी के राग-द्वेषादि कलुषताएँ नहीं है अतः उसके आत्मवध के दोष का स्पर्श नहीं है। अर्थात् समाधिमरण करने वाला आत्मवध के दोष का भागी नहीं है कहा भी है-

रागादीमणुप्पा अहिंसकेत्ति देसिदं समये।
तेसिं चेदुप्पत्ती हिंसेत्ति जिणेहि जिणद्दिट्ठा।।9।।

रागादि की उत्पत्ति नहीं होने को अहिंसा और राग-द्वेष की उत्पत्ति को जिनेन्द्र भगवान् ने हिंसा कहा है।

अथवा मरण तो अनिष्ट होता है। जैसे अनेक प्रकार के पण्य (सोना, चाँदी, वस्त्र आदि वस्तुओं) के लेन-देन, संचय आदि के करने में तत्पर किसी भी दुकानदार को उन उपयोगी वस्तुओं के आधारभूत घर का विनाश इष्ट नहीं है और वह घर के विनाश के कारणों के उपस्थित होने पर यथाशक्ति वह उन कारणों को दूर करता है, यदि उनका परिहार करना दुःशक्य होता है तो वह उस घर में रखी सोना-चाँदी आदि पण्य वस्तुओं की रक्षा करने का प्रयत्न करता है; उसी प्रकार व्रत, शील आदि के द्वारा पुण्य के संचय में प्रवर्तमान गृहस्थ भी व्रत आदि के आश्रयभूत शरीर का कभी विनाश नहीं चाहता, शरीर के कारणों के उपस्थित होने पर अपने गुणों के अविरोध से यथाशक्ति संयम के अनुसार उनको दूर भी करता है, फिर भी यदि निष्प्रतिकार अवस्था हो जाती है तो अपने संयम का नाश न हो, संयम आदि की रक्षा हो जाए, इसके लिए पूरा प्रयत्न करता है, अतः व्रतादि की रक्षा के लिए किया गया प्रयत्न आत्मवध कैसे हो सकता है?

सल्लेखनाधारी के जीवन और मरण दोनों में ही आसक्ति नहीं है। जिस प्रकार

तपस्वी शीत उष्णजन्य सुख-दुःख को नहीं चाहता और यदि बिना चाहे सुख-दुःख आ जाते हैं तो वह राग-द्वेष का अभाव होने से सुख-दुःख कृत कर्मों का बंधक भी नहीं होता है-उसी प्रकार अर्हत्प्रणीत सल्लेखना को करने वाला व्रती जीवन और मरण दोनों के प्रति अनासक्त रहता है, परन्तु यदि मरण के कारण उपस्थित हो जाते हैं तो राग-द्वेष आदि न होने से उसे आत्मवध का दोष नहीं लगता है।

सल्लेखना आत्मघात क्यों नहीं है?

मरणेऽवश्यं भाविनि कषाय सल्लेखनातनुकरणमात्रे।
रागादिमंतरेण व्याप्रियमाणस्य नात्मधातोस्ति।।77।।

मरण के नियम से उत्पन्न होने पर कषाय सल्लेखना के सूक्ष्म करने मात्र में राग-द्वेष के बिना व्यापार करने वाले सल्लेखना धारण करने वाले पुरुष के आत्मघात नहीं है।

आत्मघाती कौन है?

यो हि कषायविष्टः कुम्भजलधूमकेतुविष शस्त्रेः।
व्यपरोपयति प्राणान् तस्य स्यात् सत्यमात्मबधः।।78।।

निश्चय करके जो पुरुष कषाय से रंजित होता हुआ, कुम्भक, श्वास रोकना, जल, अग्नि, विष और शस्त्रों के द्वारा प्राणों को नष्ट करता है उसके आत्मवध वास्तव में होता है।

सल्लेखना अहिंसा भाव है?

नीयतेऽत्र कषाया हिंसाया हेतवो यतस्तनुताम्।
सल्लेखनामपि ततः प्राहुरहिंसा प्रसिद्धयर्थम्।।97।।

इस सल्लेखना में हिंसा के कारणभूत कषाय जिस कारण सूक्ष्म किये जाते हैं इसलिये सल्लेखना को भी अहिंसा की प्रसिद्धि के लिए कहते हैं।

सल्लेखना का प्रयत्न कब करना चाहिए?

जरा, रोग और इन्द्रियों की विकलता के कारण अपनी आवश्यक क्रियाओं की हानि होने पर सल्लेखना धारण करनी चाहिये। अर्थात् जिस समय व्यक्ति शरीर को जीर्ण-शीर्ण करने वाली जरा से क्षीण-बल वीर्य हो जाता है और वातादि विकारजन्य रोगों के व्याप्त होने से उसकी इन्द्रियों की शक्ति क्षीण हो जाती है तथा वह आवश्यक क्रियाओं के परिपालन में असमर्थ हो जाता है, इन्द्रिय बल के नष्ट हो जाने से मृतक के समान हो जाता है, उस समय बुद्धिमान सावधानी व्रती मरण के अनिवार्य कारणों

के उपस्थित होने पर प्रासुक भोजन-पान और उपवास आदि के द्वारा क्रमशः शरीर को कृश करता है और मरण पर्यन्त अनुप्रेक्षाओं का चिंतन करता हुआ शास्त्रोक्त विधि से सल्लेखना धारण करता है, वह उत्तमार्थ का आराधक होता है। अर्थात् जब शरीर और इन्द्रियाँ व्रतों को पालन करने में असमर्थ हो जाती है तब ज्ञानी व्रती सल्लेखना धारण करता है।

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रूजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचन माहुः सल्लेखनामार्याः।।

गणधरादिक देव प्रतिकार रहित उपसर्ग दुष्काल, बुढ़ापा और रोग के उपस्थित होने पर धर्म के लिए शरीर छोड़ने को सल्लेखना कहते हैं।

सल्लेखना के अतिचार

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि।।(37)

The partial transgression of सल्लेखना peaceful death are:

1. **जीविताशंसा**- Desire to prolong one's life.
2. **मरणाशंसा**- Desire to die soon.
3. **मित्रानुराग**- Attachment to friends.
4. **सुखानुबन्ध**- Repeated rememberance of past enjoyments.
5. **निदान**- Desire of enjoyments in the next world.

जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबन्ध और निदान ये सल्लेखना के पाँच अतिचार हैं।

(1) जीविताशंसा-आकांक्षा को आशंसा कहते हैं। आकांक्षण, अभिलाषा, और आशंसा ये एकार्थवाची है। जीवनकी आकांक्षा करना जीविताशंसा है और मरण की अभिलाषा करना मरणाशंसा है।

अवश्य नष्ट होने वाले शरीर के अवस्थान में आदर जीविताशंसा है, यह शरीर अवश्य त्यागने योग्य है, जल के बुलबुले के समान अनित्य है। ऐसे इस शरीर की स्थिति किस प्रकार स्थिर रखी जाये? कैसे वह बहुत काल तक टिका रहे इत्यादि से शरीर के ठहरने की अभिलाषी जीविताशंसा है, ऐसा जानना चाहिए।

(2) मरणाशंसा- जीवन के संक्लेश के कारण मरण के प्रति चित्त का अनुरोध मरणाशंसा है। रोगादि की तीव्र पीड़ा के कारण जीवन में क्लेश होने पर मरण के प्रति चित्त का प्रणिधान होना मरणाशंसा है। सल्लेखना धारण कर लेने पर भी यदि

ख्याति हो रही हो तो जीवन की अभिलाषा करना और शारीरिक पीड़ा के कारण मरने की इच्छा करना जीवितमरणाशंसा है।

(3) मित्रानुराग-पूर्वकृत, मित्रों के साथ धूलि में खेलने आदि का स्मरण मित्रानुराग है। अर्थात् बचपन में जिनके साथ धूलि में खेले हैं, जिन्होंने आपत्ति में सहायता दी है और सुख-उत्सव आदि में जो सहयोगी बने हैं उन मित्रों का स्मरण करना मित्रानुराग है।

(4) सुखानुबन्ध-पूर्वानुभूत प्रीतिविशेष का स्मृतिसमन्वाहार सुखानुबन्ध है। 'मैंने यह खाया, इस प्रकार के पलंग पर सोता था, इस प्रकार क्रीड़ा करता था' इत्यादि पूर्व भुक्त क्रीड़ा, शयन, भोग आदि का स्मरण करना सुखानुबन्ध कहा जाता है।

(5) निदान-भोगों की आकांक्षा से जिसमें चित्त लगा दिया जाता है, वह निदान हैं। विषय सुखों की उत्कट अभिलाषा भोगाकांक्षा है। उस भोगाकांक्षा से जिसमें नियत रूप से चित्त लगा दिया जाता है वह निदान है, अर्थात् भविष्यकाल में भोगों की वांछा करना निदान है। ये पाँच सल्लेखना के अतिचार हैं।

स्टेट क्राइम रिकार्ड ब्यूरो की चौंकाने वाली रिपोर्ट

पाँच साल में 21 हजार ने चुनी खुद की मौत

14963 पुरुष व 6311 महिलाओं ने लगाया मौत को गले

सीकर। पाँच सालों का यदि रिकार्ड खंगाला जाए तो प्रदेश में 21 हजार से भी अधिक लोगों ने अपनी मौत खुद चुनी है। जिसका खुलसा राज्य सरकार के स्टेट क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के द्वारा जारी की गई क्राइम इन राजस्थान 2016 की रिपोर्ट में हुआ है। आत्महत्या कर खुद मौत को गले लगाने में पुरुषों की संख्या 14963 तो इनमें 6311 महिलाएँ शामिल हैं। हालांकि 2017 को रिपोर्ट अभी कंपाइल नहीं हो पाई है। लेकिन, सूत्रों का अनुमान है कि इस साल भी प्रदेश में आत्महत्या करने वालों का ग्राफ बढ़ा ही है। क्राइम इन राजस्थान की रिपोर्ट में यह भी सामने आया है कि इन्हीं वर्षों के दौरान प्रदेश में 1114 विद्यार्थियों ने आत्महत्या की। वर्ष 2015 के अनुपात में 2016 में आत्महत्याओं के मामलों में 6,39 फीसदी वृद्धि हुई है। जिनमें पुरुषों के आत्महत्याओं के मामले 1.97 फीसदी दर्ज किए गए है तो महिलाओं में आत्महत्या के मामले बढकर 18.48 फीसदी तक पहुँच गए हैं। इसी प्रकार वर्ष

2015 के अनुपात में वर्ष 2016 में राज्य में विद्यार्थियों के आत्महत्या के मामले 12.18 फीसदी तक बढ़े हैं। क्योंकि 2015 में यहाँ 197 छात्रों ने आत्महत्या की तो इससे अगले साल इनकी संख्या बढ़कर 221 तक पहुंच गई है।

यह सामने आए कारण

राजस्थान में मानसिक स्वास्थ्य के लिए काम करने वाली संस्थान आरोग्य सिद्धि फाउडेशन के अध्यक्ष भूपेश दीक्षित का कहना है कि राजस्थान में आत्महत्या के मामले तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। जिसका मुख्य कारण तनाव व अवसाद है। लेकिन, इसके अलावा आर्थिक तंगी, अवैध संबंध, पारिवारिक कलह, आपसी तनातनी, शंका, काम का बोझ व मानसिक परेशानी भी इनका कारण बनी है।

सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने इच्छा मृत्यु को दी मंजूरी

कोमा में गए या मौत के कगार पर पहुँच चुके मरीजों को अब इच्छा मृत्यु का हक

कहा-जीने के अधिकार में गरिमापूर्ण तरीके से मरने का हक भी शामिल

सुप्रीम कोर्ट ने शुक्रवार को ऐतिहासिक फैसला सुनाया। कोर्ट ने कुछ शर्तों के साथ इच्छा मृत्यु (पैसिव यूथनेशिया) को मंजूरी दी। सुप्रीम कोर्ट के पाँच जजों की संविधान पीठ ने कहा कि सम्मान से मरना हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। संविधान पीठ ने 'लिविंग विल' की भी अनुमति दी। इसके तहत असाध्य बीमारी से पीड़ित व्यक्ति की इच्छा पर डॉक्टर उसका जीवन रक्षक उपकरण (लाइफसपोर्ट सिस्टम) हटा सकता है। संविधान पीठ ने अपने फैसले में कहा कि संविधान के आर्टिकल 21 के तहत जीने के अधिकार में गरिमापूर्ण तरीके से मरने का अधिकार भी शामिल है। इस फैसले से कोमा में जा चुके या मृत्युशैय्या पर पहुँच चुके लोगों को निष्क्रिय इच्छा मृत्यु का हक होगा।

एनजीओ कॉमन राज की याचिका पर चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा की अध्यक्षता वाली संविधान पीठ ने यह फैसला सुनाया। 2005 में इच्छा मृत्यु को लेकर यह याचिका दायर की गई थी। संविधान पीठ ने इस मामले में पिछले साल 11 अक्टूबर को ही फैसला सुरक्षित रखा था।

दलीलें

इच्छा मृत्यु के पक्ष में

याचिकाकर्त्ता कॉमन काज के वकील प्रशांत भूषण ने संविधान पीठ से कहा कि अगर कोई व्यक्ति बीमारी की ऐसी अवस्था में पहुँच गया है, जहाँ उसे तमाम तरह के इलाज देने के बाद भी ठीक नहीं किया जा सकता, तो ऐसे व्यक्ति से जीवनरक्षक उपकरण हटा लेने चाहिए।

सरकार का तर्क

संविधान पीठ के समक्ष केन्द्र सरकार ने इच्छा मृत्यु और लिविंग विल का विरोध किया था। लेकिन केन्द्र ने पैसिव यूथनेशिया का पक्ष लेते हुए कहा था कि सरकार ने कुछ दिशा-निर्देशों के साथ एक ड्रॉफ्ट बिल तैयार किया है।

फैसलें की खास बातें

इस मामले में चार फैसलें (कुल 538 पेज) लिखे गये हैं।

एक फैसला चीफ जस्टिस और जस्टिस एएम खानविलकर ने (192 पेज) लिखा है।

जस्टिस डीवाई चन्द्रचूड़ (134 पेज) जस्टिस एके सिकरी (112 पेज) और जस्टिस अशोक भूषण (100 पेज) ने फैसले अलग-अलग लिखे हैं।

चीफ जस्टिस ने फैसले की शुरुआत दुनियाभर के मशहूर कवियों, दार्शनिकों और लेखकों की उक्तियों का जिक्र करते हुए की।

....और इच्छा मृत्यु को लेकर सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देश

1. ऐसे मरीज जो गम्भीर रूप से बीमार हैं, जिनके उपचार की संभावना न बची हो वो इच्छा मृत्यु के लिए लिख सकता है।
2. इसके लिए परिजनों की सहमति भी अनिवार्य है।
3. पीड़ित मरीज या उसके परिजनों को अपने राज्य की हाइकोर्ट में इच्छा मृत्यु के लिए आवेदन करना होगा।
4. हाईकोर्ट संबंधित व्यक्ति की जांच के लिए एक मेडिकल बोर्ड गठित करने का आदेश जारी करेगा।
5. मेडिकल बोर्ड में एक्सपर्ट डॉक्टर मरीज के शरीर की जाँच कर यह निष्कर्ष निकालेंगे कि मरीज का उपचार संभव है या नहीं? उसके ठीक होने की संभावनाएँ हैं या नहीं?

6. मेडिकल बोर्ड की अनुमति मिलने पर हाईकोर्ट संबंधित अस्पताल, जहाँ मरीज दाखिल है, उसके चिकित्सा अधीक्षक को मरीज का लाइफ स्पोर्ट सिस्टम हटाने के लिए आदेश जारी करेगा।
7. किसी ऐसे व्यक्ति की लाइफ बिवल को लेकर पूरी छानबीन होगी, जिसे संपत्ति या विरासत में लाभ होने वाला हो। यह जांच राज्य सरकार कराएगी। जिससे दुरुपयोग न हो।

पाँच जजों की संविधान पीठ, जस्टिस सिकरी ही रहे इच्छा मृत्यु के विरोध में

संविधान पीठ में चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा, जस्टिस ए के सिकरी, जस्टिस ए एम खानविलकर, जस्टिस डी वाई चन्द्रचूड़ और जस्टिस अशोक भूषण शामिल रहे। जस्टिस ए के सिकरी का फैसला संविधान पीठ के चार जजों की राय से अलग हैं। उन्होंने इच्छा मृत्यु को स्वीकार्य न करने के पक्ष में निर्णय दिया है।

सीजे सहित चार जस्टिस पक्ष में

चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा ने कहा-अगर किसी असाध्य रोग से ग्रस्त व्यक्ति ने चिकित्सा उपकरणों के सहारे उसे जीवित न रखे जाने के संबंध में अपनी लिखित वसीयत दी होगी, तो उसकी इच्छा मृत्यु वैध मानी जाएगी। वसीयत का पालन कौन करेगा और इस प्रकार की इच्छा मृत्यु मेडिकल बोर्ड की अनुमति पर निर्भर होगी।

इच्छा मृत्यु के दो तरीके

पहला-निष्क्रिय इच्छा मृत्यु

दूसरा-सक्रिय इच्छा मृत्यु

निष्क्रिय इच्छा मृत्यु के मामले में ऐसे व्यक्ति को उसके परिजनों की इजाजत से मरने की छूट दी जाती है, जो जीवन रक्षक प्रणाली पर अचेत अवस्था में रहता है, लेकिन तकनीकी तौर पर वो जीवित होता है। परिजनों के न होने पर डॉक्टर भी ये फैसला कर सकते हैं।

लिविंग विल-मेडिकल बोर्ड की राय जरूरी होगी

कोई व्यक्ति जीवित रहते यह लिखकर रख सकता है कि लाइलाज बीमारी से ग्रस्त होने पर उसे जीवन रक्षक उपकरणों पर न रखा जाए। हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने यह स्पष्ट किया है लिविंग विल पर भी मरीज के परिवार की अनुमति जरूरी होगी। एक्सपर्ट डॉक्टरों का पैनल भी तय करेगा कि मरीज का ठीक हो पाना मुमकिन है या नहीं? जब तक केन्द्र सरकार कोई कानून नहीं बनाती है, तब तक सुप्रीम कोर्ट के

दिशा-निर्देश लागू रहेंगे। इच्छा मृत्यु के इस नए प्रावधान का दुरुपयोग रोकने के लिए शर्तें भी रखी हैं। लाइफ विल को लेकर पूरी छानबीन होगी।

जनहित याचिका पर 13 साल बाद आया सुप्रीम कोर्ट का फैसला

11 मई, 2005

एनजीओ कॉमन कॉज ने गंभीर रूप से बीमार व्यक्ति को इच्छा मृत्यु का अधिकार देने के लिए सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की। कहा-गंभीर बीमारी से जूझ रहे लोगों को 'लिविंग विल' बनाने का हक मिलना चाहिए।

16 जनवरी, 2006

सुप्रीम कोर्ट ने दिल्ली मेडिकल काउंसिल को केस में शामिल किया। साथ ही पैसिव यूथनेशिया पर डॉक्यूमेंट्स उपलब्ध कराने को कहा।

31 जनवरी, 2017

सुप्रीम कोर्ट केस में शामिल सभी पक्षों से डॉक्यूमेंन्ट्स जमा करने का कहा।

7 मार्च, 2011

सुप्रीम कोर्ट ने मुम्बई के हॉस्पिटल में कोमा में जी रहीं अरुणा शानबाग की ओर से दायर याचिका स्वीकार की। जर्नलिस्ट पिंकी वीरानी याचिका पर कोर्ट ने कहा कि परिवार की इजाजत पर ही अरुण को इच्छा मृत्यु दी जा सकती है।

13 जनवरी, 2014

चीफ जस्टिस पी सदाशिवम् के नेतृत्व में सुप्रीम कोर्ट की तीन जजों की बेंच ने मामले की अन्तिम सुनवाई शुरु की।

फरवरी, 2015

सुप्रीम कोर्ट ने पैसिव यूथनेशिया यानी इच्छा मृत्यु की याचिका को संविधान पीठ में भेजा।

15 फरवरी, 2016

केन्द्र सरकार ने सुप्रीम कोर्ट को बताया कि वह मामले में विचार कर रहा है।

11 अक्टूबर, 2017

चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा की 5 सदस्यीय संवैधानिक बैंच ने सभी पक्षों को सुनने के बाद फैसला सुरक्षित रखा।

चीफ जस्टिस ने विवेकानंद का जिक्र किया, बोले- जीवन दिव्य ज्योति, उसका सम्मान हो

सुप्रीम कोर्ट की पाँच सदस्यीय बेंच ने इच्छा मृत्यु पर फैसला सुनाते समय कई दार्शनिक बातें की

कोर्ट ने कहा-जीवन को मौत से अलग नहीं किया जा सकता, सम्मान से मरने का हक मिलना चाहिए

सुप्रीम कोर्ट की पाँच जजों की बेंच ने गम्भीर रूप से बीमार मरणासन्न व्यक्ति द्वारा इच्छा मृत्यु (पैसिव यूथनेशिया) के लिए लिखी गई वसीयत (लिविंग विल) को कानूनी मान्यता दे दी हैं। कोर्ट ने कहा कि मरणासन्न व्यक्ति को यह अधिकार होगा कि कब वह आखिरी सांस ले। कोर्ट ने कहा कि लोगों को सम्मान से मरने का पूरा हक है। संविधान पीठ ने इसमें सुरक्षा उपायों के लिए गाइडलाइन भी जारी की है। कोर्ट ने कहा कि ये गाइडलाइन तब तक जारी रहेंगी, जब तक कानून नहीं आता।

फैसला सुनाते वक्त 5 सदस्यीय बेंच ने कई दार्शनिक बातें भी कीं। इसमें स्वामी विवेकानंद के कथनों के साथ ही मशहूर कवियों की कविताओं का भी जिक्र किया गया। चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा ने स्वामी विवेकानंद की उक्ति का उल्लेख करते हुए कहा कि जीवन एक ज्योति की तरह है। इस दिव्य ज्योति का सम्मान होना चाहिए। बेंच ने कहा-स्वाभिमान के साथ जीना हमारे जीवन जीने के अधिकार का अभिन्न अंग है। जीवन और मृत्यु को अलग नहीं किया जा सकता। हर क्षण हमारे शरीर में बदलाव होता है। बदलाव एक नियम है। मृत्यु जीने की प्रक्रिया का ही हिस्सा है।

दुनिया के 21 देशों में अलग-अलग तरीकों से इच्छा मृत्यु का अधिकार है, भारत 22वाँ देश

क्या है इच्छा मृत्यु

इच्छा मृत्यु यानी यूथनेशिया। यह ग्रीक शब्द है। यूथनेशिया, इच्छा-मृत्यु या मर्सी किलिंग (दया मृत्यु) पर दुनियाभर में लंबे समय से बहस चल रही है। कई देशों में इसे इजाजत देने की माँग बढ़ी है। इस मुद्दे में कानूनी, मेडिकल और सामाजिक पहलू भी जुड़े हुए हैं। मेडिकल साइंस में इच्छा-मृत्यु कई तरीके से होती है।

इच्छा मृत्यु के 5 तरीके

वॉलेंटरी एक्टिव यूथनेशिया : मरीज की मंजूरी के बाद जान-बूझकर ऐसी दवाइयां देना, जिससे उसकी मौत हो जाए। यह केवल नीदरलैंड्स व बेल्जियम में वैध है।

इनवॉलेंटरी एक्टिव यूथनेशिया : मरीज खुद अपनी मौत की मंजूरी देने में असमर्थ हो, तब उसे मारने के लिए जान-बूझकर दवाइयाँ देना। यह दुनिया में गैर-कानूनी है।

पैंसिव यूथनेशिया : मरीज की मृत्यु के लिए इलाज बंद करना या जीवनरक्षक प्रणालियों को हटाना। भारत में सुप्रीम कोर्ट ने इसी का अधिकार दिया है।

एक्टिव यूथनेशिया : ऐसी दवा देना, ताकी मरीज को राहत मिले। पर बाद में मौत हो जाए। यह कुछ देशों में वैध है।

असिस्टेड सुसाइड : सहमति के आधार पर डॉक्टर मरीज को ऐसी दवा देते हैं, जिन्हें खाकर आत्महत्या की जा सकती है।

मुम्बई के दंपती माँग रहे इच्छा मृत्यु

मुम्बई की 86 साल के नारायण लवाते और 78 साल की इरावती लावते पति-पत्नी हैं। इस दंपती ने कुछ समय पहले राष्ट्रपति रामनाथ कोंविद को पत्र लिखकर इच्छा मृत्यु की माँग की थी। पर राष्ट्रपति ने कोई जवाब नहीं दिया। नारायण और इरावती रिटायर्ड कर्मचारी हैं। दंपती ने राष्ट्रपति को लिखे पत्र में कहा था कि हम निःसंतान हैं, किसी गंभीर बीमारी से ग्रसित भी नहीं हैं। वे अपनी देखभाल करने में भी सक्षम नहीं हैं। अब दंपती ने खुदकुशी की योजना बनाई है। इरावती ने पति से कहा है कि वो उन्हें 31 मार्च के बाद गला दबाकर मुक्त कर दें।

इन देशों में है अधिकार

स्विट्जरलैंण्ड, नीदरलैंड्स, लक्जमबर्ग, अलबानिया, कोलंबिया, जर्मनी, जापान, कनाडा, बेल्जियम, ब्रिटेन, आयरलैंड, चीन, न्यूजीलैंड, इटली, स्पेन, डेनमार्क, फ्रांस, रोमानिया, फिनलैंड में इच्छा मृत्यु का अधिकार है। इसके अलावा अमेरिका के 7 और ऑस्ट्रेलिया के विक्टोरिया राज्य में भी इसका कानून है। कई देशों में मामला कोर्ट में चल रहा है।

भारत का सबसे चर्चित मामला

अरुणा 42 साल तक कोमा में रहीं, लेकिन कोर्ट ने इच्छा मृत्यु नहीं दी

बात, 27 नवम्बर, 1973 की है। अरुणा शानबाग मुम्बई के केईएम अस्पताल में नर्स थीं। सोहनलाल वहाँ एक वार्ड बॉय था। 23 साल की अरुणा ड्यूटी खत्म कर चेंजिंग रूम में गई थीं। यहाँ सोहन ने अरुणा को दबोच लिया। कुत्ते के गले की चेन से करुणा का गला दबाकर दुष्कर्म की कोशिश की। इससे अरुणा के दिमाग की नसें फैट गई। इसके बाद अरुणा कोमा में चलीं गई। उनकी आँखों की रोशनी चली गई, शरीर को लकवा मार गया, अरुणा बोल भी नहीं पा रही थीं। वक्त बीतने के साथ दोस्त, परिवार सबने उसे छोड़ दिया। आरोपी सोहन को 7 साल की सजा मिली। जर्नलिस्ट पिंकी वीरानी द्वारा 2011 में अरुणा के लिए की गई इच्छा मृत्यु की माँग सुप्रीम कोर्ट ने ठुकरा दी थीं।

दुनिया का सबसे चर्चित मामला

टैरी शियावों की इच्छा मृत्यु के लिए अमेरिका की संसद में बहस हुई

अमेरिकी महिला टैरी शियावो दुनिया भर में कई साल तक चर्चा में रहीं। फ्लोरिडा की रहने वाली टेरी 1990 में अपने घर में हार्ट फेल होने की वजह से गिरीं और हमेशा के लिए कोमा में चली गई। दस साल ऐसे ही रहने के बाद उसके पति ने डॉक्टरों से कहा कि वे टैरी का लाइफ सपोर्ट निकाल दें। इसका टैरी के परिवार वालों ने विरोध किया। टैरी के शरीर में डॉक्टरों को हरकत दिखाई दे रही थी। देश में बहस छिड़ी की यदि लाइफ सपोर्ट सिस्टम हटा दिया जाएगा तो इच्छा मृत्यु को मान्यता मिल जाएगी। टैरी का मामला अमेरिकी संसद कांग्रेस तक गया, जहाँ इस पर कई दिनों तक बहस हुई। कोई फैसला लिया जाता, उसके पहले ही 18 मार्च, 2005 को टैरी की मौत हो गई।

सुप्रीम कोर्ट ने इच्छामृत्यु और मौत की वसीयत की अनुमति दी...

मरण के वरण को मंजूरी

बशर्ते-रोगी हो मरणासन्न या मर्ज हो लाइलाज

नई दिल्ली। सुप्रीम कोर्ट ने शुक्रवार को एक ऐतिहासिक फैसले में कहा है कि कोमा में जा चुके या मौत के कगार पर पहुँच चुके लोगों के लिए वसीयत (लिविंग विल) के आधार पर निष्क्रिय इच्छामृत्यु की मंजूरी दी जा सकती है। सीजेआई जस्टिस दीपक मिश्रा की 55 जजों की पीठ ने 538 पेज के फैसले में कहा कि

संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत व्यक्ति को अगर गरिमा के साथ जीने का हक है तो उसे सम्मान से मरने का भी हक है।

पीठ में शामिल जस्टिस डीवाई चन्द्रचूड़ ने कहा कि स्वाभिमान के साथ जीना हमारे जीवन जीने के अधिकार का अभिन्न अंग है। जीवन और मृत्यु को अलग नहीं किया जा सकता। हर क्षण हमारे शरीर में बदलाव होता है। बदलाव एक नियम है। जीवन को मौत से अलग नहीं किया जा सकता। मृत्यु जीने की प्रक्रिया का ही हिस्सा है। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी कहा कि इच्छा मृत्यु के लिए लिखी गई लिविंग विल (वसीयत) कानूनी तौर पर मान्य होगी। इस सम्बन्ध में कोर्ट ने विस्तृत दिशा-निर्देश जारी किए हैं। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि कोर्ट के तय किए गए दिशा-निर्देश इस पर कानून बनने तक प्रभावी रहेंगे। कोर्ट ने इस मामले में 12 अक्टूबर को फैसला सुरक्षित रखा था। पीठ में जस्टिस दीपक मिश्रा के अलावा जस्टिस एके सीकरी, जस्टिस एएम खानविलकर, जस्टिस डीवाई चंद्रचूड़, जस्टिस अशोक भूषण भी शामिल थे।

क्या है सक्रिय इच्छामृत्यु ?:

इसमें मरीज को जहर या पेनकिलर के इंजेक्शन का ओवरडोज देकर मौत दी जाती है। इसे भारत समेत ज्यादातर देशों में अपराध माना जाता है। सुप्रीम कोर्ट ने इसे मंजूरी नहीं दी है।

क्या है निष्क्रिय इच्छामृत्यु?:

अगर कोई लंबे समय से कोमा में है तो उसके परिवार वालों की इजाजत पर उसे लाइफ सपोर्ट सिस्टम से हटाना निष्क्रिय इच्छामृत्यु है। सुप्रीम कोर्ट ने इसी की इजाजत दी है।

केन्द्र सरकार किस बात के खिलाफ थी?

केन्द्र सरकार लिविंग विल के खिलाफ थी। वह अरुणा शानबाग मामले में दिए गए सुप्रीम कोर्ट के फैसले के आधार पर सक्रिय इच्छामृत्यु पर सहमति देने को तैयार थी। उसका कहना था कि इसके लिए कुछ शर्तो के साथ ड्राफ्ट तैयार है। इसमें जिला और राज्य के मेडिकल बोर्ड सक्रिय इच्छामृत्यु पर फैसला करेंगे। लेकिन मरीज कहे कि वह मेडिकल सपोर्ट नहीं चाहता यह उसे मंजूर नहीं है। केन्द्र सरकार ने इसके दुरुपयोग की आशंका जताई थी।

क्या थी याचिका?

गैर सरकारी संगठन कॉमन लॉज ने लिविंग विल का हक देने की माँग को लेकर 2005 में याचिका दायर की थी। इसमें कहा गया था कि गंभीर बीमारी से जूझ रहे लोगों को लिविंग विल बनाने का हक होना चाहिए। याचिका में कहा गया था कि इंसान को सम्मान से जीने का हक है तो उसे सम्मान से मरने का भी हक होना चाहिए। 1994 में पी. रधिनम के केस में सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि किसी भी व्यक्ति को 'मरने का अधिकार' भी होता है। हालाँकि, 1996 में सुप्रीम कोर्ट ने दो साल पुराना फैसला पलट दिया। कहा-मरने का अधिकार देना तो संविधान के अनुच्छेद 21 यानी जीने के अधिकार का उल्लंघन है। 2000 में केरल हाईकोर्ट ने कहा कि इच्छामृत्यु की इजाजत देना आत्महत्या को स्वीकार करने के बराबर होगा। सुप्रीम कोर्ट ने मुंबई की नर्स अरुणा शाहनबाग मामले में दायर जर्नलिस्ट पिंकी वीरानी की याचिका पर 7 मार्च, 2011 को निष्क्रिय इच्छामृत्यु की इजाजत दे दी थी। हालांकि, अरुणा शानबाग के लिए इच्छामृत्यु की माँग खारिज कर दी थी। सुप्रीम कोर्ट ने अपने फैसले में कहा था कि कुछ खास परिस्थितियों में संबंधि हाइकोर्ट के निर्देश पर निष्क्रिय इच्छामृत्यु की इजाजत दी जा सकती है, लेकिन इसके लिए तीन डॉक्टरों और मरीज के परिवार वालों की इजाजत जरूरी है। पिंकी वीरानी शानबाग की परिजन नहीं थीं, इसलिए उनकी पिटीशन खारिज कर दी गई। अरुणा शानबाग के साथ 27 नवम्बर, 1973 में मुम्बई के केईएम हॉस्पिटल में एक वार्ड ब्वॉय ने कथित तौर पर रेप किया था। उसने अरुणा के गले में जंजीर कस दी थी, जिससे वे कोमा में चली गई थीं। वे 42 साल तक कोमा में रहीं। उनकी 18 मई, 2015 को मौत हो गई थी।

मौत से अलग नहीं जिन्दगी, जिने की प्रक्रिया का हिस्सा

लिविंग विल यानी

यह एक लिखित दस्तावेज होता है। कोर्ट के इस फैसले के बाद अब कोई व्यक्ति जीवित रहते मौत की वसीयत करके कह सकता है कि अगर वह मरणासन्न और लाइलाज स्थिति में पहुँच जाए तो उसे जिंदा रखने के वाले उपकरण हटा लिए जाए।

इच्छामृत्यु क्या है?

किसी गंभीर या लाइलाज बीमारी से पीड़ित शख्स को दर्द से निजात देने के

लिए डॉक्टर की मदद से उसकी जिन्दगी का अन्त करना है। यह दो तरह की होती है। निष्क्रिय इच्छामृत्यु (पैसिव यूथनेशिया) और सक्रिया इच्छा मृत्यु (एक्टिव यूथेनेशिया)।

क्या है आवश्यक दिशा-निर्देश?

कोर्ट ने साफ कहा है कि इच्छामृत्यु की इजाजत कुछ आवश्यक दिशा-निर्देशों के तहत ही दी जा सकती है। कानून बनने तक कोर्ट के दिशानिर्देशों का पालन अनिवार्य है। इच्छामृत्यु से पहले इस बात को सुनिश्चित करना अनिवार्य हैं कि लिविंग विल को मजिस्ट्रेट के सामने तैयार किया गया है और दो गवाह इस दौरान मौजूद थे। अन्यथा इसका दुरुपयोग हो सकता है।

यहाँ भी इजाजत

बेल्जियम, नीदरलैंड, स्विट्जरलैंड और लक्जमबर्ग में इच्छामृत्यु की इजाजत है। अमरीका के सिर्फ 5 राज्यों में इसकी इजाजत है।

जज बोले-

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था....

जीवन एक ज्योति की तरह है, जो निरन्तर जलती रहती है। अगर कोई वाकई जिन्दगी चाहता है, तो उसे इसे पाने के लिए हर पल मरना होगा।

विलिंग विल...विशेषज्ञों को कुछ आशंकाएँ

दबाव में आ सकते हैं मरीज?

कोर्ट के फैसले के बाद यह सवाल भी उठ रहा है कि असाध्य बीमारियों से जूझ रहे लोगों पर इच्छा मृत्यु की वसीयत लिखने का पारिवारिक दबाव भी आ सकता है।

बुजुर्गो के खिलाफ साजिश की आशंका

विधि विशेषज्ञों के मुताबिक, लिविंग विल के बाद ऐसे बुजुर्गों पर अत्याचार बढ़ सकता है, उनकी उपेक्षा हो सकती है। जबरन उन्हें मौत के मुँह में ढ़केला जा सकता है।

देखभाल कर्मी कर सकते हैं नजरअंदाज

इस फैसले के बाद देखभालकर्मी ऐसे बुजुर्गो को नजरअंदाज कर सकते हैं। या फिर उन्हें निष्क्रिय इच्छामृत्यु के लिए मजबूर कर सकते हैं।

मानहानि कानून बहुत अस्पष्ट है। मानहानि की सजा जुर्माना है या दो वर्ष तक का कारावास। लेकिन असली मुश्किल यह है कि इन मुकदमों

को लड़ने में समय और ऊर्जा का व्यय होता है और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कि पैसा लगता है। अमीर और ताकतवर लोगों के लिए यह आसान है, पर दूसरों के लिए नहीं।

समस्या तो मानहानि का कानून है

दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल ने हाल ही में एक क्षमा याचना से दूसरी क्षमा याचना की ओर यात्रा की है। विभिन्न राजनेताओं ने उन पर जो कई मानहानि केस ठोक रखे हैं, उन्हें निरस्त करने के लिए उन्होंने क्षमा याचना के पत्र भेजे हैं। इसका प्रभाव उनके बहुत-से समर्थकों पर अच्छा नहीं पड़ा है। भारत का मानहानि कानून बहुत समय से विवादग्रस्त रहा है और इसके उचित कारण हैं। अमरीका और दक्षिण अफ्रीका में आपराधिक मानहानि का कानून नहीं के बराबर है। इंग्लैंड में इसे खत्म कर दिया गया है। अधिकांश दूसरे देशों में, किसी वक्तव्य से सचमुच नुकसान हुआ है, इसके सबूत माँगे जाते हैं, जैसा कि भारत में नहीं है।

ताकतवर लोगों ने कमजोर लोगों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को कुचलने के लिए इन कानूनों का दुरुपयोग किया है-अक्सर आलोचकों, असहमत लोगों और विरोधियों को धमका कर। सब से बुरी बात यह है कि यह कानून बहुत अस्पष्ट है। मानहानि की सजा जुर्माना है या दो वर्ष तक का कारावास। लेकिन असली मुश्किल यह है कि इन मुकदमों को लड़ने में समय और ऊर्जा का व्यय होती है और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पैसा लगता है। अमीर और ताकतवर लोगों के लिए यह आसान है, पर दूसरों के लिए नहीं।

केजरीवाल के खिलाफ देश के विभिन्न 16 शहरों में दो दर्जन से ज्यादा मानहानि के मुकदमे दर्ज हैं। जो भारत में मुकदमेबाजी में होने वाली दुर्गति से वाकिफ हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं कि केजरीवाल ने अंततः क्यों ये मुकदमे लड़ना छोड़ दिया है। इसमें अपार पैसा और समय लगता है, उसका सीधा द्वंद्व दिल्ली का शासन चलाने में लगने वाले समय से हैं। यदि ये केस मेरे खिलाफ होते, तो मैं पहले ही दिन माफी माँग लेता। पुराने कानून पर ऊर्जा खपाने से क्या फायदा, जिसका उपयोग पर सिर्फ परेशान करने के लिए किया जा रहा है?

कुछ लोग मानहानि के मुकदमे लड़ने की बहादुरी का काम करते हैं, इसी से साबित हो जाता है कि उसने जो आरोप लगाए हैं, वे सही है। यह नजरिया अहं की मिथ्या चेतना से उपजता है, क्योंकि अधिकांश मामलों में मानहानि का मुकदमा जीतने

का एक ही मतलब होता है - वैसे वक्तव्य, देने के अपने अधिकार को बनाए रखना। इसकी भी गारंटी नहीं होती कि आप के अगले वक्तव्य पर मानहानि का दावा ठोक नहीं दिया जायेगा। हाँ, इससे अपनी सार्वजनिक छवि बनाए रखने में मदद जरूर मिलती है। मीडिया घरानों को भी मानहानि के मुकदमे लड़ने पड़ते हैं। केजरीवाल के मामले में, माफी माँगने और अपने वक्तव्यों को वापस ले लेने से उसकी सार्वजनिक छवि थोड़ी धूमिल हुई है, लेकिन इससे शासन चलाने के लिए जो समय मिलता है, उसे देखें तो यह बहुत मामली कीमत है। आखिर, किसी मुख्यमंत्री का काम शासन करना है, न कि दिन भर एक कोर्ट से दूसरी कोर्ट में जाकर मुकदमे लड़ना। सवा ये है कि केजरीवाल ने पहले ही क्यों नहीं माफी माँग ली?

इसका जवाब है- आदर्शवाद। शासन वे हीरो बनना चाहते थे, जैसा कुछ लोग उन्हें देखना चाहते हैं। शायद वे केस जीत कर और अपने वक्तव्यों को कानूनी रूप से सही साबित कर 'दुष्ट' शक्तियों से लोहा लेना चाहते थे। पर ऐसे में शासन की जो क्षति होती, उसके मद्देनजर यह व्यावहारिक नहीं था। दुर्घटना से देर भली। सन् 1763 में, चर्च ने गेलिलियो को जिंदा जलाने की धमकी दी। गेलिलियो का दावा था कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। चर्च ने गेलिलियो के सामने बहुत बड़ा संकट उपस्थित कर दिया था। उसने महसूस किया कि अपने कथन की सच्चाई साबित करने में ऊर्जा लगाने से बेहतर है कि माफी माँग ली जाए। उन्होंने 'गलती' मंजूर कर अपना दावा वापस ले लिया। 350 साल बाद चर्च ने अपनी गलती के लिए माफी माँग ली। ऐसे ही, केजरीवाल की माफी से यह साबित नहीं होता कि मजीठिया या सिब्बल या जेटली कालिया-मुक्त राजनेता हैं। बात इतनी-सी है कि केजरीवाल ने अदालतों से छुटकारा पा कर वृहत्तर लक्ष्य पर अपने को केन्द्रित किया है। जिनके पास ज्यादा पैसा और समय है, वे यह लड़ाई जारी रखते हुए हैं-खुद मानहानि मुकदमे ठोक करके भी। आप के राज्य सभा सदस्य संजयसिंह आजाद ने कहा है कि वे अपने विरुद्ध मजीठिया द्वारा चलाए जा रहे मानहानि मुकदमे को लड़ते रहेंगे।

दोनों ही फैसले अपने-अपने ढंग से दुरुस्त हैं। बहरहाल, मैं मानता हूँ कि हमारी ज्यादा बड़ी लड़ाई खुद मानहानि कानून के खिलाफ होनी चाहिए जो पुराना पड़ चुका है। अभिव्यक्ति की आजादी को सुरक्षित रखने के लिए इस कानून को सुधारने की सख्त जरूरत है। यह पूरा विवाद लोगों को यह सिखाता कि वे अपने अधिकारों के लिए लड़ना छोड़ दें। सीख यह है कि कब अन्याय के खिलाफ लड़ा जाये और

कब बड़े लक्ष्य के लिए एक कदम पीछे हट जाया जाए। माफी माँगने से किसी आदमी की संघर्ष की भावना में कमी नहीं आ जाती। सच्चा योद्धा जानता है कि कौन-से युद्ध लड़े जाने चाहिए और किनसे किनारा कर लेना चाहिए।

कुछ लोग मानहानि के मुकदमे लड़ने को बहादूरी का काम समझते हैं। उनके अनुसार कोई मुकदमा लड़ रहा है, इसी से साबित हो जाता है कि उसने जो आरोप लगाए है, वे सही हैं...

ऐसे ही, केजरीवाल की माफी से यह साबित नहीं होता कि मजीठिया या सिब्बल या जेटली कालिमा मुक्त राजनेता है।

हर क्षेत्र में नेतृत्व करने की योग्यता

परमज्ञान-सुख-उपदेश हेतु अनिवार्य योग्यता-पूर्ण स्वतंत्रता

(अरिहंत-तीर्थंकर इस हेतु परम आदर्श उदाहरण)

(चाल : आत्मशक्ति....)

परमज्ञान सुख-उपदेश हेतु जो अनिवार्य योग्यता को मैंने जाना।
उसका संक्षेप वर्णन कर रहा हूँ, जो (मैंने) ग्रन्थों में पढ़ा व अनुभव किया।
इस हेतु चाहिए परम स्वतंत्रता जो अन्तरंग व बाह्य से परिपूर्ण हो।
अन्तरंग है प्रमुख कारण बाह्य कारण, भी सभी तत्योग्य पूर्ण हो।।(1)

इस हेतु परम उदाहरण है तीर्थंकर जो राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध से स्वतंत्र है।
अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य सम्पन्न व अठारह दोषों से पूर्ण स्वतंत्र है।
देवकृत समवशरण में विराजमान होकर विश्व को दिव्य उपदेश है।
सात सौ अठारह भाषा युक्त देते उपदेश, असंख्य देव-मानव-पशु हेतु।।(2)

अन्तरंग दोषों से परिपूर्ण रहित होने से, होते वे पूर्ण प्रामाणिक हैं।
अनन्तज्ञान सहित होने से, कहते वे परम सत्य-तथ्य है।।
अनन्तवीर्य से सहित होने से, होते पूर्णतः भय शून्य है।
घाती कर्मों से रहित होने से, सम्पूर्ण बाधा-विघ्नों से शून्य है।।(3)

सम्पूर्ण संकीर्णता व भेद-भाव तथा, शत्रु-मित्र से पूर्णतः परे हैं।

ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि रहित, मान-अपमान-द्वन्द्व रहित हैं।।
सामाजिक-राजनैतिक-कानूनी-रुढ़ी व पंथ-मत-परम्परा परे हैं।
क्षेत्र-जाति-भाषा संकीर्णता परे, अन्त्योदय-सर्वोदय से परे हैं।।(4)

इस हेतु ही चक्रवर्तीपद तक त्यागकर साधु बनकर बनते तीर्थंकर।
अन्यथा सम्पूर्ण स्वतंत्रता बिन न बन पाते सर्वज्ञ हितोपदेशी तीर्थंकर।।
ऐसा ही जो जितने अंश में होते जाते हैं स्वतंत्र हैं।
वे भी उतने अंश में होते ज्ञानी-सुखी व उपदेशक है।।(5)

ऐसे महान् पुरुष ही होते हैं गणधर से आचार्य-उपाध्याय।
अन्य क्षेत्रों में भी जो यथायोग्य उक्त गुण युक्त वे भी होते तथायोग्य।।
शिक्षा-राजनीति-समाजसुधार आदि में भी उक्त गुण युक्त नेता ही।
सही नेतृत्व करने के योग्य होते, अन्यथा तानाशाही या अयोग्य नेता।।(6)

ऐसा ही परिवार -संघ-संगठन-ग्राम-नगर-राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्र में।
होते हैं योग्य या अयोग्य सर्वत्र ही, ये नियम होते प्रयोग हैं।।
मेरा भी अनुभव अनेक क्षेत्रों में ऐसे ही हुए व अभी अधिक हो रहे हैं।
इस हेतु ही कनक द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानुसार निर्बन्ध-निर्द्वन्द्व हो रहा है।।(7)

इन कारणों से मैं निस्पृह-निराडम्बर से, ज्ञान-ध्यान-तप रत हूँ।
शोध-बोध व अनुभव करके प्रयोग से लेखन-प्रवचन कर रहा हूँ।।(8)

ओबरी 10.3.2018 रात्रि 08.39

सन्दर्भ-

परम नेता का स्वरूप

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभृताम्।

ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये।।

I bow to him who is the guide on the path to liberation, the destroyers of Mountains of Karmas and Knower of the priniciples of the universe, so that I may attain these qualities belonging to him.

जो मोक्ष मार्ग के नेता हैं, कर्मरूपी पर्वतों के भेदने वाले है, और विश्वतत्त्व के

ज्ञाता है, उनकी मैं उनके समान गुणों की प्राप्ति के लिए सदा वदंना करता हूँ।

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र, स्वंतत्रता के सूत्र) में आदि में मंगलाचरण के रूप में मोक्षमार्ग के नेता (स्वतंत्रता के हितोपदेशक) स्वतंत्रता के भोक्ता (स्वामी) एवं विश्व के समस्त तत्त्व के ज्ञाता (सर्वज्ञ) को उनकी गुणों की उपलब्धि के लिए नमस्कार (नमन) किया गया है।

महान् आदर्श पुरुषों को नमस्कार करना गुणग्राही महान् आदर्श परंपरा है। इसे ही मंगलाचरण कहते हैं। मंगलाचरण का अर्थ-''मलं पापं गालयति विध्वंसयतीति मंगल'', अथवा ''मंगं पुण्य सुखं तल्लाति आदत्ते गृह्णाति वा मंगलं।''

'मं' अर्थात् मल या पाप को जो गालयति अर्थात् गलावे सो मंगल है अथवा 'मंगं' जो पुण्य तथा सुख उसे जो लाति-अर्थात् देवे सो मंगल है। मंगलाचरण स्वरूप से महान् आत्मा का गुणगान करना, नमन करना कोई अंध परम्परा नहीं, एक सभ्य परम्परा है। क्योंकि-

नास्तिक्य परिहारस्तु शिष्टाचार प्रपालनम्।

पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नं शास्त्रादौ तेन संस्तुति।।

नास्तिकपने के त्याग के लिए अर्थात् ग्रंथकर्त्ता आस्तिक्य है यह बताने के लिए, शिष्टाचार जो परम्परा से चला आया विनय का नियम उसको पालने के लिए, पुण्य की प्राप्ति के लिए तथा विघ्न को दूर करने के लिए इन चार बातों को चाहते हुए ग्रंथ के आदि में इष्ट देव की स्तुति की जाती है।

यहाँ प्रश्न होना स्वाभाविक है कि इष्ट देव कौन है? इष्ट देव वे हैं जो सम्पूर्ण दोषों से रहित हो, स्वतन्त्रता को प्राप्त कर लिया हो तथा स्वतंत्रता के मार्ग का उपदेशक हो। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है-

आप्तेनोरिच्छन्न दोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।

भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्।।(5)

नियम से आप्त को दोष रहित, सर्वज्ञ और आगम का स्वामी होना चाहिए। क्योंकि अन्य प्रकार से आप्तपना नहीं हो सकता।

सर्व दोषों से रहित होने एवं आध्यात्मिक गुणों से सहित जीव आप्त है, भले उसका नाम कुछ भी हो। गुणग्राही आदर्श व्यक्ति गुण चाहता है और उस गुण की पूजा करता है, न कि व्यक्ति की और न हि मूर्ति की। अकलक देव ने कहा है-

यो विश्वं वेद वेद्यं जनन जलनिधेर्भङ्गिनः पारदृश्वा,

पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीयम्।
तं वंदे साधुवंद्यं सकल गुण निधिं ध्वस्तदोषद्विषन्तं,
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदल निलयं केशवं वा शिवं वा।।(9)(अ. स्तोत्र)

जो विश्व के सम्पूर्ण ज्ञान को जान लिया अर्थात् विश्व विद्या विशारद है। जो जन्म-जरा-मरण रूपी समुद्र को नष्ट कर लिया, पार कर लिया। जिनके वचन पूर्वापर विरोध से रहित, सम्पूर्ण दोषों से रहित, उपमा रहित है, सम्पूर्ण गुणों की खान स्वरूप समस्त दोषों को ध्वस्त कर लिया और साधुओं से भी वन्दनीय ऐसी आत्मा को वन्दना है, भले ऐसे गुण सहित बुद्ध हो, महावीर हो, वर्द्धमान हो, ब्रह्मा हो, विष्णु हो, या शिव हो। हरिभद्र सूरि ने लोकतत्त्व निर्णय में कहा है-

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेष कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः।।

मेरा वीर जिनेन्द्र में पक्षपात नहीं है, एवं कपिलादि में द्वेष नहीं है, किन्तु जिसका वचन युक्ति युक्त, तर्क संगत, परस्पर अविरोध, इहलोक और परलोक का हितकारी है, उन्हीं का वचन ग्रहण करने योग्य है, अन्य का नहीं।

प्रश्न होता है कि ऐसे महान् पुरुषों की वन्दना क्यों करनी चाहिए? इसका उत्तर यह है कि उनके गुणों की उपलब्धि के लिए, उनके गुण स्मरण के लिए, कृतज्ञता ज्ञापन करने के लिए। कहा भी है-

अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः,
स च भवति सुशास्त्रात् तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रासादात्बुद्धैः,
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्तिः।।

इष्टफल की सिद्धि का उपाय सम्यक्ज्ञान है। जो सम्यग्ज्ञान यथार्थ आगम से होता है। उस आगम की उत्पत्ति आप्त (देव) से है इसलिए वह आप्त (देव) पूज्यनीय है जिसके प्रसाद से तीव्र बुद्धि होती है। निश्चय से साधु लोक अपने ऊपर किये गये उपकार को नहीं भूलते हैं।

श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः।
इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनि पुंङ्गवाः।।

मोक्षमार्ग की सिद्धि परमेष्ठी भगवान् के प्रसाद से होती है, इसलिये मुनियों में मुख्य, शास्त्र आदि में उनके गुणों की स्तुति करते हैं।

स्तुति करने का मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक कारण पूज्यपाद स्वामी ने कहा है-

अज्ञानोपास्तिरज्ञान ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
ददाति यस्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धिमिदं वचः।।(23) इष्टोपदेश

अपने आत्मा से भिन्न अरहंत, सिद्ध, परमात्मा की उपासना, आराधना करके आत्मा उनके समान परमात्मा बन जाती है। जैसे-दीपक से भिन्न बत्ती दीपक की उपासना करके यानी साथ-साथ रहकर दीपक के समान प्रकाशमान बन जाती है।

येन भावेन तद्रुपं ध्यायेतमात्मानमात्मवित्।
तेन तन्मयता याति सोपधिः स्फटिको यथा।।

जिस भाव से जिस प्रकार यह आत्मा का ध्यान करता है उस स्वरूप हो जाता है। जैसे-स्फटिक मणि विभिन्न रंगों के सम्पर्क से उस वर्ण रूप परिणमन करता है।

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति।
अर्हत्ध्यानविष्टो भवार्हन् स्यात् स्वयं तस्मात्।।

यह आत्मा जिस भाव से परिणमन करता है वह उस स्वरूप हो जाता है। अर्हत् के ध्यान सहित ध्याता स्वयं अर्हत् रूप हो जाता है।

कुन्दकुन्द देव ने प्रवचनसार में भी प्रकारान्तर से इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। यथा-

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्य लयं।।(80)

जो कोई अरहंत भगवान् के द्रव्यपने, गुणपने तथा पर्यायपने को जानता है वह पुरुष अर्हत के ज्ञान के पीछे अपने आत्मा को जानता है। उस आत्मज्ञान के प्रताप से उस पुरुष का दर्शनमोह का निश्चय से क्षय हो जाता है।

सव्वे वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा।
किच्चा तधोवदेसं णिव्वादा ते णमो तेसिं।।(82)

सब ही अरहंत उसी विधि से कर्मांशों का क्षय करके और उसी प्रकार उपदेश को करके वे निर्वाण को प्राप्त हुए उनके लिए नमस्कार हो।

इस मोक्षशास्त्र के मंगलाचरण में ही मोक्षमार्ग के उपाय मोक्षमार्ग के उपदेशक और मोक्षमार्ग के गुण, मुमुक्षु के कर्त्तव्य, मोक्ष का स्वरूप आदि का संक्षिप्त सार गर्भित वर्णन किया गया है। सम्पूर्ण द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म को नष्ट करके वीतरागी सर्वज्ञ,

कृतकृत्य बनना ही मोक्ष हैं और उसके उपाय ही मोक्षमार्ग है। जो मोक्षमार्ग के लिए एवं मोक्ष के लिए विरोध-कारण स्वरूप घाती कर्म है उनको नष्ट करने वाला एवं जीवों के हित का उपदेश देने वाला ही मोक्षमार्ग का नेता है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय एवं अंतराय को नाश करके जब जीव अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतवीर्य और अनंतसुख को प्राप्त करके जो वीतरागी और हितोपदेशी बनता है वह ही यथार्थ से मोक्षमार्ग का नेता है। तीर्थंकर प्रकृति सहित ऐसे जीव को तीर्थंकर केवली कहते हैं। उनके समवशरण की रचना होती है वे समवशरण में विराजमान होकर देव-दानव, मानव पशु-पक्षियों के लिए भी मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं। इसे ही दिव्यध्वनि कहते हैं। यह 18 महाभाषा तथा 700 क्षुद्रभाषा सहित होती है। तीर्थंकर भगवान् सम्पूर्ण अंग-उपांग से 718 भाषाओं में या विश्व की सम्पूर्ण भाषा यहाँ तक कि पशु-पक्षियों की भाषा में भी उपदेश देते हैं। सामान्य केवली के समवशरण की रचना नहीं होती है परन्तु गंधकुटी की रचना होती है और गंधकुटी में रहकर पूर्वोक्त विधि से धर्मोपदेश देते हैं। दिव्य ध्वनि के बारे में कहा भी है-

यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पन्दितोष्टद्वयं,
नो वांछा कलितं न दोषमलिनं नोच्छवासरूद्धक्रमं।
शान्तामर्षविषै! समं पशुगणैराकर्णितं कर्णिभिः,
तन्नः सर्वविदो विनष्ट विपदः पायादपूर्वं वचः।।

सर्व आपत्तियों से रहित श्री सर्वज्ञ भगवान् का वह अपूर्व वचन हमारी रक्षा करे जो सर्व आत्माओं का हितकारी है, अक्षर रूप में नहीं है, दोनों ओठों के हलन-चलन बिना प्रगट होता है, इच्छा रहित होता है, दोषों से मलिन नहीं है, न उसमें श्वासोच्छवास के रुकने का क्रम है, जिसको क्रोध रूपी विष को शांत किए हुए पशुगण भी अपने कानों से सुन सकते हैं।

इस मंगलाचरण सूत्र से यह भी ध्वनित होता है कि मुमुक्षु (मोक्ष चाहने वालों) को गुणग्राही होकर गुणियों का आदर-सत्कार, विनय करना चाहिए। क्योंकि इससे स्वयं के अन्दर विद्यमान स्वगुण धीरे-धीरे प्रगट होते हैं और एक समय वह आता है कि वह भी उसे प्राप्त कर लेता है। तुलसीदास ने कहा भी है-

''लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभू दूर।।''

मनोविज्ञान सिद्धान्त यह है कि जो व्यक्ति जिस वस्तु को चाहता है उसका उस वस्तु के प्रति आकर्षण होता है। इसी प्रकार जो मोक्ष चाहता है उसका आकर्षण

मोक्षमार्ग व मोक्ष जीव के प्रति होता है। इससे उसे प्रेरणा आदर्श मिलता है जिससे वह धीरे-धीरे मोक्षमार्ग पर चलता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है।

मुक्तामुक्तैकरूपो यः कर्मभिः संविदादितः।
अक्षयं परमात्मानं ज्ञानमूर्ति नमाम्यहम्।।

जो कर्मों से मुक्त है और ज्ञानादि गुणों से अमुक्त है उस अविनाशी ज्ञानमूर्ति परमात्मा को नमस्कार करता हूँ।

येनात्माऽबुद्धयतरात्मैव, परत्वेनैव चापरम्।
अक्षयानन्तबोधाय, तस्मै सिद्धात्मने नमः।।

जिसने अपना आत्मा-आत्मा रूप ही और अन्य शरीर आदि जड़ पदार्थ तथा चेतन पदार्थ अन्य पदार्थ के रूप में ही जाने हैं उस अविनाशी अनन्त ज्ञानमय सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार हो।

निर्मलः केवलः सिद्धो विविक्त प्रभुरक्षयः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः।।

परमात्मा कर्ममल रहित, अन्य पदार्थों के सम्बन्ध रहित, सब पदार्थों से भिन्न, त्रिलोक स्वामी, अपने गुणों-पर्यायों से न नष्ट होने वाला, उच्च पद में स्थित, उत्कृष्ट , अनन्त चतुष्टयधारी, कर्मविजयी (ईश्वर) है।

यस्य स्वयं स्वाभावाप्तिरभावे कृत्स्नकर्मणः।
तस्मै संज्ञानरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने।।

जिस भगवान् के समस्त ज्ञानावरणादि कर्मों के नष्ट हो जाने पर अपने आप अपने शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हो गई है उस अनन्तज्ञान स्वरूप सिद्ध परमात्मा को नमस्कार हो।

शुद्धचैतन्यपिंडाय सिद्धाय सुखसम्पदे।
विमलागमसाराय नमोऽस्तु परमेष्ठिने।।

जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप है, सुख स्वरूप है, जिनकी सम्पत्ति अनंत सुख है, जो निर्मल आगम का सारभूत है, ऐसे परमेष्ठी को मेरा नमस्कार हो।

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदंधोदघाइकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं।।1।।(प्रवचनसार)
सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे।
समणे य णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे।।2।।

ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेगं।
वंदामि य वट्टंते अरहंते माणुसे खेत्ते।।3।।
किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं।
अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव सव्वेसिं।।4।।
तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं समासेज्ज।
उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती।।5।।

(एस) यह जो मैं ग्रन्थकार इस ग्रन्थ को करने का उद्यमी हुआ हूँ और अपने ही द्वारा अपने आत्मा का अनुभव करने में लवलीन हूँ सो **(सुरासुर-मणुसिंदवंदिदं)** तीन जगत् में पूजने योग्य अनंतज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुणों के आधार भूत अर्हत्पद में विराजमान होने के कारण से तथा इस पद के चाहने वाले तीन भुवन के बड़े पुरुषों द्वारा भले प्रकार जिनके चरण कमलों की सेवा की गई है इस कारण से स्वर्गवासी देवों और भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवों के इन्द्रों से वंदनीय **(धोदघाइकम्ममलं)** परम आत्म-लवलीनतारूप समाधिभाव से जो रागद्वेषादि मलों से रहित निश्चय आत्मिक सुखरूपी अमृतमय निर्मल जल उत्पन्न होता है, उससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों के मल को धोने वाले अथवा दूसरों के पापरूपी मल, धोने के लिए निमित्त कारण होने वाले, (धम्मस्स कत्तारं) रागादि से शून्य निज आत्मतत्त्व में परिणमन रूप निश्चय धर्म के उपादान कर्त्ता अथवा दूसरे जीवों को उत्तम क्षमा आदि प्रकार धर्म का उपदेश देने वाले **(तित्थं)** तीर्थ अर्थात् देखे, सुने, अनुभवे, इन्द्रियों के विषय सुख की इच्छा रूप जल के प्रवेश से दूरवर्ती, परम समाधिरूपी जहाज पर चढ़कर संसार समुद्र से तिरने वाले अथवा दूसरे जीवों को संसार सागर से पार होने का उपाय-मय एक जहाज स्वरूप **(वड्ढमाणं)** सब तरह अपने उन्नतरूप ज्ञान को धरने वाले तथा रत्नमय धर्म तत्त्व के उपदेश करने वाले श्री वर्द्धमान तीर्थंकर परमदेव को **(पणमामि)** नमस्कार करता हूँ।(1)

यहाँ टीकाकार खुलासा करते हैं कि मैं आराधना करने वाला हूँ तथा से अर्हंत आदिक आराधना करने योग्य है, ऐसे आराध्य-आराधक का यहाँ विकल्प है, उसे द्वैत नमस्कार कहते हैं तथा राग द्वेषादि औपाधिक भाव के विकल्पों से रहित जो परम समाधि है, उसके बल से आत्मा में ही आराध्य-आराधक भाव होना अर्थात् दूसरा कोई भिन्न पूज्यपूजक नहीं है, मैं ही पूज्य हूँ, मैं ही पूजारी हूँ, ऐसा एकत्व भाव स्थिरतारूप होना उसे अद्वैत नमस्कार कहते हैं। पूर्व गाथाओं में कहे गए पाँच

परमेष्ठियों को इस लक्षण रूप द्वैत अथवा अद्वैत नमस्कार करके मठ चैत्यालय आदि व्यवहार आश्रम से विलक्षण भावाश्रम रूप जो मुख्य आश्रम है उसको प्राप्त होकर मैं वीतराग चारित्र को आश्रय करता हूँ अर्थात् रागादिकों से भिन्न यह अपनी आत्मा से उत्पन्न सुख स्वभाव का रखने वाला परमात्मा है, सो ही निश्चय से मैं हूँ। ऐसा भेदज्ञान तथा वही परमात्म स्वभाव सब तरह से ग्रहण करने योग्य है ऐसी रूचि रूपी सम्यग्दर्शन है, इस तरह दर्शन, ज्ञान स्वभावमयी भावाश्रम है। इस भावश्रम पूर्वक आचरण में आता हुआ, जो पुण्य बधं का कारण सराग चारित्र है, उसे हेय जानकर त्याग करके निश्चय शुद्धात्मा के अनुभव वीतराग चारित्र भाव को ग्रहण करता हूँ!

समीक्षा: *आस्तिक स्वस्थ धार्मिक परम्परा में प्रत्येक कार्य में प्रारम्भ में आध्यात्मिक महापुरुषों के गुणों का स्मरण किया जाता है, जिसे मंगलाचरण कहा जाता है। प्रवचनसार जैसे महान् आध्यात्मिक, दार्शनिक, गहन सूत्रात्मक शास्त्र के प्रारम्भ में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने मंगलाचरण में पंच महासूत्रों का प्रणयन करके प्रायोगिक रूप से यह सिद्ध कर दिया कि मंगलाचरण की भूमिका प्रत्येक धार्मिक कार्य में कितनी महत्वपूर्ण है। मंगलाचरण का सांगोपांग महत्वपूर्ण वर्णन कलिकाल सर्वज्ञ वीरसेन स्वामी ने अपना धवला टीका में निम्न प्रकार से किया है-*

मंगल पुण्यं पूतं पवित्रं प्रशस्तं शिवं शुभं कल्याणं-भद्रं सौख्यमित्येवमादीनि मंगलपर्यायवचनानि।

मंगल, पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, शुभ, कल्याण, भद्र और सौख्य इत्यादि मंगल के पर्यायवाची नाम हैं।

मलं गालयति विनाशयति दहति हन्ति विशोधयति विध्वंसयतीति मङ्गलम्। *धवला पृ.32*

जो मल का गालन करे, विनाश करे, घात करे, दहन करे, नाश करे, शोधन करे, विध्वंस करे, उसे मंगल कहते हैं।

मङ्गशब्दोऽयमुद्दिष्टः पुण्यार्थस्याभिधायकः।
तल्लातीत्युच्यते सभ्दिर्मङ्गलं मङ्गलार्थिभिः।।(6) धवला पृ.33

यह 'मंग' शब्द पुण्यरूप अर्थ का प्रतिपादन करने वाला माना गया है। उस पुण्य को जो लाता है उसे मंगल के इच्छुक मंगल कहते हैं।

पापं मलमिति प्रोक्तमुपचारसमाश्रयात्।
तद्धि गालयतीत्युक्तं मङ्गलं पण्डितैर्जनैः।।(17)

उपचार से पाप को भी मल कहा गया है। इसलिये जो उसका गालन अर्थात् नाश करता है उसे भी पण्डितजन मंगल कहते हैं।

जिनेन्द्रदेव के गुणों की कीर्तन करने से विघ्न नाश को प्राप्त होते हैं, कभी भी भय नहीं होता है, दुष्ट देवता आक्रमण नहीं कर सकते हैं और निरन्तर यथेष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है।

विद्वान पुरुषों ने, प्रारम्भ किये गये किसी भी कार्य के आदि, मध्य और अन्त में मंगल करने का विधान किया है। वह मंगल निर्विघ्न कार्य-सिद्धि के लिये जिनेन्द्र भगवान् के गुणों का कीर्तन करना ही है।

वह मंगल दो प्रकार का है। निबद्ध-मंगल और अनिबद्ध-मंगल। जो ग्रन्थ के आदि में ग्रन्थकार के द्वारा इष्ट देवता नमस्कार निबद्ध कर दिया जाता है, अर्थात् श्लोकादिरूप से रचा जाता है उसे निबद्ध मंगल कहते हैं। और जो ग्रन्थकार के द्वारा देवता को नमस्कार किया जाता है। किन्तु श्लोकादि के द्वारा संग्रह नहीं किया जाता है, उसे अनिबद्ध मंगल कहते हैं।

अरिहंत का स्वरूप

आविर्भूतानन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यविरतिक्षायिकसम्यक्त्वदानलाभभोगोपभोगाद्यनन्तगुण त्वादिहैवात्मकसात्कृ सिद्धस्वरूपाः स्फटिकमणिमहीधरगर्भोद्भूतादित्यबिम्बवद्दैदीप्यमानाः स्वशरीरपरिमाणा अपि ज्ञानेन व्याप्तविश्वरूपाः स्वस्थितशेषप्रमेयत्वतः प्राप्तविश्वरूपाः निर्गताशेषामयत्वतो निरामयाः विगताशेषपापाञ्जनपुञ्जत्वेन निराञ्जनाः दोषकलातीतत्वतो निकष्लाः तेभ्योऽर्हद्भ्यो नमः इति यावत्। **धवला, पृ.45**

*अनन्त ज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्त-सुख, अनन्त-वीर्य, अनन्त-विरति, क्षायिक-सम्यक्त्व, क्षायिक-दान, क्षायिक-लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग आदि प्रकट हुए अनन्त गुण स्वरूप होने से उन्होंने यहीं पर सिद्ध-स्वरूप प्राप्त कर लिया है, स्फटिकमणि के पर्वत के मध्य से निकलते हुए सूर्य-बिम्ब के समान जो दैदीप्यमान हो रहे हैं, अपने शरीर-प्रमाण होने पर भी जिन्होंने अपने ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर लिया है, अपने **(ज्ञान)** में ही सम्पूर्ण प्रमेय रहने के कारण (प्रतिभासित होने से) जो विश्वरूपता को प्राप्त हो गये है, सम्पूर्ण आमय अर्थात् रोगों के दूर हो जाने के कारण जो निरामय हैं, सम्पूर्ण पापरूपी अंजन के समूह के नष्ट हो जाने से जो निरंजन है, और दोषों की कलाएँ अर्थात् सम्पूर्ण दोषों से रहित होने के कारण जो निष्कल है, ऐसे उन अरिहंतों को नमस्कार हो।*

सिद्ध का स्वरूप

'णमो सिद्धाणं' सिद्धाः निष्ठिताः कृतकृत्याः सिद्धसाध्याः नष्टाष्टकर्माणः। (धवला पृ.46)

णमो सिद्धाणं अर्थात् सिद्धों को नमस्कार हो। जो निष्ठित अर्थात् पूर्णतः अपने स्वरूप में स्थित है, कृतकृत्य हैं ,जिन्होंने अपने साध्य को सिद्ध कर लिया है, और जिनके ज्ञानावरणादि आठ कर्म नष्ट हो चुके हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं।

आचार्य का स्वरूप

'णमो आइरियाणं' पञ्चविधमाचारं चरन्ति चारयन्तीत्याचार्याः चतुर्दश विद्यास्थानपारगाः एकादशाङ्गधराः। आचाराङ्गधरा वा तात्कालिकस्वसमयपरसमयपारगो वा मेरुरिव निश्चलः क्षितिरिव सहिष्णुः सागर इव बहिः क्षिप्तमलः सप्तभय विप्रमुक्तः आचार्यः। **(धवला पृ.48)**

'णमो आइरियाणं' आचार्य परमेष्ठी को नमस्कार हो। जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य इन पाँच आचारों का स्वयं आचरण करते हैं और दूसरों साधुओं से आचरण कराते हैं उन्हें आचार्य कहते हैं। जो चौदह विद्या स्थानों के पारंगत हो, ग्यारह अंग के धारी हो, अथवा आचारांगमात्र के धारी हो, अथवा तत्कालीन स्वसमय और परसमय में पारंगत हो, मेरु के समान निश्चल हो, पृथ्वी के समान सहनशील हो, जिन्होंने समुद्र के समान मल अर्थात् दोषों को बाहर फेंक दिया हो, और जो सात प्रकार के भय से रहित हों, उन्हें आचार्य कहते है।

उपध्याय का स्वरूप

'णमो उवज्झायाणं' चतुर्दशविद्यास्थानव्खातारः उपाध्यायाः तात्कालिकप्रवचनव्याख्यातारो वा आचार्यस्योक्तशेषलक्षणसमन्विताः संग्रहानुग्रहादिगुणहीनाः।

चोद्दस-पुव्व-महोयहिमगम्म सिव-त्थिओ सिवत्थीणं।
सीलंधराण वत्ता होइ मुणीसो उवज्झायो।।32।।
एतेभ्य उपाध्यायेभ्यो नमः इति यावत्। (धवलाः पृ.50)

'णमो उवज्झायाणं' उपाध्याय परमेष्ठी को नमस्कार हो। चौदह विद्यास्थान के

व्याख्यान करने वाले उपाध्याय होते हैं, अथवा तत्कालीन परमागम के व्याख्यान करने वाले उपाध्याय होते हैं। वे संग्रह, अनुग्रह आदि गुणों को छोड़कर पहले कहे गये आचार्य के समस्त गुणों से युक्त होते हैं।

जो साधु चौदह पूर्वरूपी समुद्र में प्रवेश करके अर्थात् परमागम का अभ्यास करके मोक्षमार्ग में स्थित हैं, तथा मोक्ष के इच्छुक शीलधरों अर्थात् मुनियों को उपदेश देते हैं, उन मुनीश्वरों को उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। ऐसे उपाध्यायों को नमस्कार हो।

साधु का स्वरूप

'णमो लोए सव्व साहूणं' अनन्तज्ञानादिशुद्धात्मस्वरूप साधयन्तीति साधवः। पंचमहाव्रतधरास्त्रिगुप्तिगुप्ताः अष्टादशशीलसहस्त्रधाराश्चतुरशीतिशत सहस्त्रगुणधराश्च साधवः।

सीह-गय-वसह-मिय-पसु-मारुद-सूरुवहि-मंदरिंदु-मणी।
खिदि-उरगंबर-सरिसा परम-पय-विमग्गया साहू।।33।।
सकल धर्म भूमीषूत्पन्नेभ्यस्त्रिकालगोचरेभ्यः साधुभ्यो नमः।धवला, पृ.51

'णमो लोए सव्वासाहूण ' लोक अर्थात् ढाई द्वीपवर्ती सर्व साधुओं को नमस्कार हो। जो अनन्त ज्ञानादिरूप शुद्ध आत्मा के स्वरूप की साधना करते हैं उन्हें साधु कहते हैं। जो पाँच महावतों को धारण करते हैं, तीन गुप्तियों से सुरक्षित है, अठारह हजार शील के भेदों को धारण करते हैं और चौरासी लाख उत्तर गुणों का पालन करते हैं वे साधु परमेष्ठी होते है।

सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी या उन्नत, बैल के समान भद्र प्रकृति, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह गोचरी-वृत्ति करने वाले, पवन के समान निःसंग या सब जगह बिना रुकावट के विचरने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी या सकल तत्वों के प्रकाशक, उदधि अर्थात् सागर के समान गम्भीर, मन्दराचल अर्थात् सुमेरु-पर्वत के समान परीषह और उपसर्गों के आने पर अकम्प और अडोल रहने वाले, चन्द्रमा के समान शांतिदायक, मणि के समान प्रभा-पुंजयक्त, क्षिति के समान सर्व प्रकार की बाधाओं को सहने वाले, उरग अर्थात् सर्प के समान दूसरे के बनाये हुए अनियत आश्रय-वसतिका आदि में निवास करने वाले, अम्बर अर्थात् आकाश के समान निरालम्बी या निर्लेप और सदाकाल परमपद अर्थात् मोक्ष का अन्वेषण करने वाले साधु होते हैं। सम्पूर्ण कर्म भूमियों में उत्पन्न हुए त्रिकालवर्ती

साधुओं का नमस्कार हो।

अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः,
स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धै,
र्न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरंति।। (नियमसार, पृ.18)

'अभिमत फल की सिद्धि का उपाय सम्यग्ज्ञान सुशास्त्र से होता है और सुशास्त्र की उत्पत्ति आप्त से होती है, इसलिये उनके प्रसाद से ही इष्टमोक्ष की सिद्धि होने से वे आप्त प्रबुद्ध ज्ञानी जनों के द्वारा पूज्य होते हैं क्योंकि साधुजन किये हुये उपकार को कभी नहीं भूलते हैं।'

केवली का स्वाधीन सुख

पक्खीणदिघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अधिकतेजो।
जादो अणिंदिओ सेा णाणं सोक्खं च परिणमदि।।(19) प्रवचनसार

आगे शिष्य ने प्रश्न किया कि उस आत्मा के विकार रहित स्वसंवेदन लक्षण शुद्धोपयोग के प्रभाव से सर्वज्ञपना प्राप्त होने पर इन्द्रियों के द्वारा उपयोग तथा भोग के बिना किस तरह ज्ञान और आनन्द हो सकते है?

इसका उत्तर आचार्य देते हैं-

(सो) वह सर्वज्ञ आत्मा जिसका लक्षण पहले कहा है (पक्खीणघाइकम्मो) घातियाकर्मों को क्षयकर अर्थात् अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य इन चतुष्टय रूप परमात्मा द्रव्य भावना के लक्षण को रखने वाले शुद्धापयोग के बल से ज्ञानावरणादि घातियाकर्मों को नाशकर (अणंतवरवीरियो) अंत रहित और उत्कृष्ट वीर्य को रखता हुआ। (अहियतेजो) व अतिशय तेज का धरता हुआ अर्थात् इन्द्रियों के विषयों के व्यापार से रहित (जादो) हो गया (च) तथा ऐसा होकर (णाणं) केवलज्ञान को (सोक्खं) और अनंतसुख को (परिणमदि) परिणमन करता है।

इस व्याख्यान में यह कहा है कि आत्मा यद्यपि निश्चय से अनंतज्ञान और अनंतसुख के स्वभाव को रखने वाला है तो भी व्यवहार से संसार की अवस्था में पड़ा हुआ है, जब इसका केवलज्ञान और अनंतसुख स्वभाव कर्मों से ढ़का हुआ है, तब तक पाँच इन्द्रियों के आधार से कुछ अल्पज्ञान व कुछ अल्पसुख में परिणमन करता है। फिर जब कभी विकल्प रहित स्वसंवेदन या निश्चय आत्मानुभव के बल से

कर्मों का अभाव होता है, तब क्षयोपशम ज्ञान के अभाव होने पर इन्द्रियों के व्यापार नहीं होते हैं, उस समय अपने ही अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख को अनुभव करता है, क्योंकि स्वभाव के प्रकट होने में पर की अपेक्षा नहीं है, ऐसा अभिप्राय है।

अगर हमें दूसरों का लीडर बनना है, तो यह सवाल नहीं पूछना चाहिए, ''क्या मैं लोगों से मिलूँगा?'' बल्कि यह पूछना चाहिए, ''मैं किन लोगों से मिलूँगा'' मेरा अवलोकन कहता है कि लीडर आदतन पहल करते हैं और अनुयायी प्रतिक्रिया करते हैं। इनके बीच के अंतर पर ध्यान दें -

लीडर	**अनुयायी**
पहल करते हैं	प्रतिक्रिया करते हैं
नेतृत्व करते हैं, फोन उठाते और सम्पर्क करते हैं	सुनते हैं, फोन की घंटी बजने का इंतजार करते हैं
योजना बनाने में समय लगाते हैं, समस्याओं का पूर्वानुमान लगा लेते हैं	बिना किसी योजना के अपने दिन बिताते हैं, समस्याओं के आने के बाद प्रतिक्रिया करते हैं
लोगों के साथ समय का निवेश करते हैं	लोगों के साथ समय बर्बाद करते हैं
अपने कैंलेडर को प्राथमिकताओं से भरते हैं	अपने कैंलेण्डर को आग्रह से भरते हैं

मूल्यांकन करें या मात खाएँ

कई बार प्राथमिकताएँ काले या सफेद रंग के बजाय धूसरित रंग में भी आती हैं। मैंने पाया है कि इंसान को यह तय करने में सबसे ज्यादा उलझन होती हैं कि पहले नम्बर पर किसे रखा जाए। नीचे दिए गए सवाल आपकी प्राथमिकता तय करने में सहयोग देंगे।

मुझसे क्या अपेक्षित है? कोई लीडर अन्तिम जिम्मेदारी के सिवाय कुछ भी छोड़ सकता है। किसी नए काम को स्वीकार करने से पहले इस सवाल का हमेशा जवाब दिया जाना चाहिए ''मुझसे क्या अपेक्षित है?'' दूसरे शब्दों में, मुझे ऐसा क्या करना है, जो मेरे सिवाय कोई दूसरा नहीं कर सकता? चाहे वे जो भी चीज़े हों, उन्हें प्राथमिकता की सूची में ऊँचे स्थान पर रखा जाना चाहिए। इन्हें करने में अगर आप असफल रहते हैं, तो बेरोजगार भी हो सकते हैं। आपके पद के नीचे के स्तरों की

कई ज़िम्मेदारियाँ होंगी। परन्तु बहुत कम ऐसी होंगी, जिन्हें आप और सिर्फ़ आप पूरा कर सकते हैं। यह फर्क पहचाने कि कौन से काम आपको करने हैं और कौन से किसी दूसरे को सौंपने हैं। **प्रभावशाली लीडर के सूत्र (मेक्सवेल)**

ज्ञान-वैराग्य हेतु पाप-पापिओं का चित्रण (वर्णन)

(चाल : आत्मशक्ति....)

हिंसात्मक या पापात्मक दृश्य देखने या सुनने से।
नहीं होता है पाप बन्ध ज्ञान-वैराग्य होने से।।
इससे जिन्हें न होते ज्ञान-वैराग्य, उन्हें होता है पापबन्ध।
क्योंकि उनमें नहीं संवेदनशीलता, दुःखी जीवों से कृपापरत्व।।(1)

संवेग व वैराग्य के लिए, अनुप्रेक्षायें सतत चिन्तनीय।
अनित्य-अशरण-संसार-अशुचि-आस्रव-लोकादि चिन्तनीय।।
इन अनुप्रेक्षाओं में विशेषतः, हिंसा या पापों का वर्णन है।
'हिंसादिष्विहामुत्रपायावधदर्शनं' में, उपाय-अवद्य चिन्तन है।।(2)

''दुःखमेव वा'' अर्थात् हिंसादिक दुःखमय हो ऐसा चिन्तन योग्य है।
इस हेतु ही चौरासीलक्ष्ययोनि या चतुर्गति दुःखों का चिन्तन है।।
''जगत्कायस्वभावौ'' वा संवेगवैराग्यार्थं यह सब पाप व दुःख दर्शनीय।
''आर्तनरा धर्मपरा भवन्ति'' या दुःख में सुमिरन सरल-सहज है चिन्तनीय।।(3)

''आत्मपरिणाम हिंसन हेतुत्वान्'' सर्वमेव हिंसैतत्'' ही भाव हिंसा है।
हिंसा के कारण व परिणाम चिन्तन से, हिंसा त्याग करना योग्य है।।
''बिन जानन ते दोष गुणन को कैसे त्यजीये गहिए'' के अनुसार।
हिंसा या पापों के गुण-दोष बिन हिताहित विवेक असम्भव।।(4)

अतएव ही जैनधर्म में पाप व पापिओं का वर्णन प्रचुर है।
नरक-तिर्यंच-मनुष्य गति के पाप व दुःख वर्णन प्रचुर है।।
निलांजन की मृत्यु देखकर, आदिनाथ को हुआ ज्ञान-वैराग्य।
पशुओं की करुण ध्वनि सुनकर, नेमीनाथ को हुआ ज्ञान-वैराग्य।।(5)

गौतम बुद्ध को घायल, हंस व वृद्ध-रोगी-शव-साधु से हुआ वैराग्य।
अधिकांश तीर्थंकर से ले साधु-साध्वियों को, ऐसा ही होता है वैराग्य।।

पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी व सुकुमार-सुकौसल पर हुआ उपसर्ग।
सातसौमुनि पर उपसर्ग का वर्णन, चित्र ज्ञान-वैराग्य हेतु योग्य।।(6)
दुःखमा-सुखमा काल में ही इन सब कारणों से होता है वैराग्य।
इससे विपरीत इन्द्रियसुख, युक्त, भोग भूमिज/(वे देव) में न होता वैराग्य।।
मन्दिर में भी उक्त विषयों के दृश्य भी होते हैं, चित्रित।
तीर्थंकर गणधर से ले आचार्य आदि, उक्त विषयों का करते वर्णन।। (7)
ऐसा ज्ञान-वैराग्य उत्पादक विषयों को भी न समझ पाते मूढ़।
ऐसे मूढ़ों के सम्बोधनार्थे 'सूरी कनक' ने किया वैराग्यपूर्ण काव्य।।(8)

ओबरी 07.03.2018 रात्रि 08:28

भारतीय काम तेजी से निपटाते हैं, पर अधूरा छोड़ देते है

कार, फोन आदि से जुड़े काम निपटाने की गति भारतीयों की तेज है, लेकिन वे काम अधूरा छोड़ देते है। तय वक्त में पूरा नहीं कर पाते।

यूएई के लोगों की गति धीमी

संयुक्त अरब अमीरात के लोग रूस और भारत की तुलना में अधिक काम पूरा करते है लेकिन इनकी गति बहुत धीमी है।

चीन हर हाल में बेहतर

85 प्रतिशत काम पूरा हो जाता है चेक गणराज्य में निर्धारित समय में। यह दर सबसे बेहतर।

81 प्रतिशत काम तय समय में पूरा करते हैं चीन के लोग

60 प्रतिशत काम तय वक्त में पूरा कर नीचे से दूसरे स्थान पर भारतीय

सन्दर्भ-

परिग्रह त्याग की भावनाएँ

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च।(8)

For the vow against wordly attachment, the 5 (contmplation of observance are) giving or self denial of love and hatred (Ragja dvesa) in the pleasing (and) displeasing (woldly) objects of the (five) senses.

मनोज्ञ और अमनोज्ञ इन्द्रियों के विषयों में क्रम से, राग और द्वेष का त्याग करना ये अपरिग्रह व्रत की पाँच भावनाएँ हैं।

स्पर्शन आदि पाँचों इन्द्रियों के स्पर्श आदि मनोज्ञ, अमनोज्ञ (इष्टानिष्ट) विषयों में राग-द्वेष का त्याग करना अर्थात् इष्ट विषयों में राग और अनिष्ट विषयों में द्वेष का त्याग करना आकिंचन्य (परिग्रह त्याग) व्रत की पाँच भावनाएँ है।

हिंसादि पाँच पापों के विषय में करने योग्य विचार

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम्। (9)

The destructive or dongerous (and) censurable (character of the 5 faults) injury, etc, in this (as also) in the next world (ought to be) meditated upon.

हिंसादिक पाँच दोषों में ऐहिक और पारलौकिक अपाय और अवद्य का दर्शन भावने योग्य है।

अभ्युदय और निःश्रेयस् के साधनों का नाशक अपाय है, या भय का नाम अपाय है। अभ्युदय (स्वर्गादि इहलोकिक सम्पदा) और निःश्रेयस (मोक्ष) की क्रिया अपाय कहते हैं। अथवा इहलोक भय, परलोक भय, मरण भय, वेदना भय, अगुप्ति भय, अनरक्षक भय, अकस्मात् भय इन सात प्रकार के भय को अपाय कहते हैं।

गर्ह्य निन्दनीय को अवद्य कहते हैं। ऐसा चिंतवन करना चाहिए कि हिंसक नित्य उद्विग्न रहता है, सतत अनुबद्ध वैर वाला होता है। इस लोक में वध (मरण) बन्धन, क्लेश आदि को प्राप्त करता है और मरकर परलोक में अशुभ गति में जाता है और लोक में भी निन्दनीय होता है। अतः हिंसा से विरक्त होना ही कल्याणकारी है। मिथ्याभाषी का कोई विश्वास नहीं करता है। असत्यवादी इस लोक में जिह्वाच्छेद आदि के दण्ड को भोगता है। जिसके सम्बन्ध में झूठ बोलता है, वे उसके वैरी हो जाते हैं अतः उनसे भी अनेक आपत्तियाँ आती हैं। मरकर अशुभ गति में जाता है और निन्दनीय भी होता है। अतः असत्य बोलने से विरक्त होना कल्याणकारी है। परधन के ग्रहण करने में आसक्ति चित्त वाला चोर सर्वजनों के द्वारा तिरस्कृत होता है, निरन्तर भयभीत रहता है। इस लोक में अभिघात (मारपीट), वध, बन्धन, हाथ, पैर, कान, नाक, ओष्ठ आदि का छेदन-भेदन और सर्वस्वहरण आदि दण्ड भोगता है (प्राप्त करता है) और मरकर परलोक में अशुभ गति में जाता है, अतः चोरी से

विरक्त होना ही श्रेयस्कर है तथा अब्रह्मचारी (कुशीलसेवी) मानव मदोन्मत्त हाथी के समान हथिनी से ठगाया हुआ, हथिनी के वशीभूत हुआ हाथी मारण-ताड़न-बन्धन-छेदन आदि अनेक दुःखों को भोगता है। उसी प्रकार परस्त्री के वश हुआ मानव वध-बंधनादि को भोगता है। मोहाभिभूत होने के कारण कार्य (करने योग्य), अकार्य (नहीं करने योग्य) के विचार से शून्य होकर किसी शुभ कर्म का आचरण नहीं करता है। परस्त्री का आलिंगन तथा उसके संग में रति करने वाले मानव के सर्व लोग वैरी बन जाते हैं। परस्त्रीगामी इस लोक में लिंगच्छेदन, वध, बंधन, क्लेश, सर्वस्वहरणादि के दुःखों को प्राप्त होते हैं तथा मरकर परलोक में अशुभ गति में जाते है और यहाँ निन्दनीय होते हैं। अतः अब्रह्म से विरक्त होना ही श्रेयस्कर है, आत्महित कारक है तथा परिग्रहवान् पुरुष माँसखण्ड को ग्रहण किये हुए पक्षी की तरह अन्य पक्षियों के द्वारा झपटा जाता है, चोर आदि के द्वारा अभिभवनीय (तिरस्कृत) होता है, उस परिग्रह के अर्जन, रक्षण और विनाशकृत अनेक दुःखों को प्राप्त होता है। जैसे ईंधन से अग्नि तृप्त नहीं होती है, उसी प्रकार परिग्रह से तृप्ति नहीं होती। लोभकषाय से अभिभूत होने से कार्य, अकार्य से अनभिज्ञ हो जाता है। परिग्रहवान् मानव मरकर परलोक में नरक, तिर्यचादि अशुभ गति में जाता है। 'यह लोभी है-कंजूस है' इत्यादि रूप से निन्दनीय होता है। अतः परिग्रह का त्याग करना ही श्रेयस्कर है। ये हिंसादि पाप, अपाय और अवद्य के कारण हैं, ऐसी निरन्तर भावना भानी चाहिये।

दुःखमेव वा। (10)

One must also mediate, that the five faults, injury etc. are pain personified, as they themselves are the veritable wombs of pain.

अथवा हिंसादिक दुःख ही हैं ऐसी भावना करनी चाहिये।

दुःख के कारण होने से हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य एवं परिग्रह दुःख स्वरूप है। क्योंकि हिंसादिक पाप से इहलोक में शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक आदि दुःख मिलते हैं और परलोक में भी नरक-तिर्यंच आदि दुर्गति में जीव को अनेक कष्ट प्राप्त होते हैं। इसका कारण यह है कि हिंसादिक पाप असाता वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण है और असाता वेदनीय दुःख का कारण है इसलिए दुःख के कारण या दुःख के कारण के कारण जो हिंसादिक है उनमें दुःख का उपचार है।

जिस समय जीव हिंसादि पाप करता है उस समय में उसका भाव दूषित होने के कारण जो कर्मास्राव होता है वह कर्मास्रव पाप प्रकृति रूप में परिणमन कर लेता

है। यह पाप ही उस पापी को अनेक प्रकार का दुःख देता है। पाप प्रवृत्ति के समय जो दूषित भाव होता है उससे मानसिक-तनाव, मानसिक उद्वेग, चिंता, भय आदि उत्पन्न होते हैं जिसके कारण उसे तत्काल ही मानसिक कष्ट एवं यातनायें मिलती है जिससे विभिन्न मानसिक रोग के साथ-साथ शारीरिक रोग होता है। जैसे-ब्लेड प्रेशर बढ़ना, सिर दर्द, कैन्सर, टी.बी., हृदय गति रुकना (हार्ट फेल), उन्माद, पागलपन आदि रोग होते हैं। इतना ही नहीं इस लोक में ही अपमान, प्रताड़ना, जेल जाना, सामाजिक प्रतिष्ठा का ह्रास, अविश्वास, शत्रुता, कलह यहाँ तक की प्राण दण्ड आदि कष्ट मिलते है। जो हिंसा करता है उसके फलस्वरूप इस जन्म में उसकी हिंसा हो सकती है पर जन्म में अकाल मरण, रोग आदि यातनाएँ सहन करनी पड़ती है।

झूठ बोलने से दूसरों का विश्वास झूठ बोलने वाले पर से उठ जाता है जिह्वा छेद आदि दण्ड मिलता है। केवल एक बार झूठ बोलने पर राजा वसु का स्फटिकमय सिंहासन फट गया। वह नीचे गिरा तथा पृथ्वी भी फट गई और वह पृथ्वी में समावेश होकर नरक में गया। मिथ्या बोलने वाला परभव में गूँगा (मूक) होता है, मुँह में घाव होता है और मुँह से बदबू आती है।

चोरी करने वाला इस जन्म में अनेक शारीरिक दण्ड को पाता है। उस पर कोई विश्वास नहीं करता है। राजा सरकारादि उसके धन अपहरण करके जेल में दण्ड देते है, यहाँ तक कभी-कभी प्राणदण्ड मिलता है। परभव में भिखारी बनता है एवं उसका भी धन अपहरण अन्य के द्वारा किया जाता है।

मैथुन सेवन में शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक कष्ट होता है क्योंकि आयुर्वेद के अनुसार एक बार संभोग से जो वीर्य क्षय होता है उतना वीर्य 42 दिन के भोजन से तैयार होता है। इससे सुजाक, मस्तिष्क दुर्बलता, शारीरिक शक्ति का ह्रास, स्मरण शक्ति का ह्रास, रोग प्रतिरोधक शक्ति की कमी आदि अनेक विपत्तियाँ आ घेरती है। वर्तमान में जो एड्स रोग ने विश्व में आतंक फैलाया है उस महारोग की उत्पत्ति एवं वृद्धि अब्रह्मचर्य से ही हुई है। अब्रह्मचर्य से ही जनसंख्या की वृद्धि होती है और इसकी वृद्धि से खाद्याभाव, आवास का अभाव, प्रदूषण में वृद्धि, भूखमरी, समुचित शिक्षा-दीक्षा का अभाव आदि अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। अब्रह्मचारी -अति कामुक व्यक्ति हिताहित विवेक से रहित होकर परस्त्री गमन, वेश्या गमन आदि कार्य भी करता है। जिससे उसे अपमान, दण्ड, सामाजिक अप्रतिष्ठा आदि अनेक समस्याएँ आ घेरती हैं। कभी-कभी कुशील सेवन से प्राणदण्ड तक मिलता है।

इष्टोपदेश में पूज्यपाद स्वामी ने काम भोग से उत्पन्न दुःख का वर्णन निम्न प्रकार किया है-

आरम्भे तापकान्प्राप्तावऽतृप्तिप्रतिपादकान्।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान्, काम कः सेवते सुधीः।।(17)

आरम्भ में संताप के कारण और प्राप्त होने पर अतृप्ति के करने वाले तथा अंत में जो बड़ी मुश्किल से भी छोड़े नहीं जा सकते, ऐसे भोगोपभोग को कौन विद्वान्-समझदार-ज्यादती व आसक्ति के साथ सेवन करेगा?

किमपीदं विषयमयं, विषमतिविषयमं पुमानयं येन।
प्रसभमनुभूयं मनोभवे-भवे नैव-चेतयते।।

अहो! यह विषयमयी विष कैसा गजब का विषय है कि जिसे जबर्दस्ती खाकर यह मनुष्य, भव-भव में नहीं चेत पाता है।

जैन धर्म में हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील को जैसे पाप माना है वैसे परिग्रह को भी पाप माना है। पाप का अर्थ है-पतन। जिसके कारण जीव पतित होता है उसे पाप कहते हैं। सचित्त एवं अचित्त परिग्रह के कारण जीव अनेक कष्टों को उठाता है तथा अनेक पापों को करता है। परिग्रह संचय के कारण ही समाज में धनी-गरीब, शोषक, शोषित, मालिक, मजदूर आदि विपरीत विषम परिस्थिति से युक्त व्यक्ति का निर्माण होता है।

जिसके पास परिग्रह रहता है वह अधिक लोभी, अधिक शोषक, गर्वी बन जाता है। क्योंकि परिग्रह के कारण उसे धनमद हो जाता है। इसे ही कबीरदास ने कहा है-

कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।
वे पावे बौराय नर, वे खाये बौराय।।

कनक (धन-सम्पत्ति) कनक (धतुरा, विषाक्त फल) से भी सौ गुनी मादक गुणयुक्त है। क्योंकि कनक (धतुरा) को खाने पर जीव नशायुक्त (पगले) हो जाते हैं परन्तु कनक (धन-सम्पत्ति) को प्राप्त करते ही जीव मदयुक्त हो जाता है।

धन-सम्पत्ति (परिग्रह) सर्वथा, सर्वदा दुःखदायी है। पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा भी है-

दुरर्ज्जेनासुरक्ष्येण, नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थं मन्यो जनः कोऽपि ज्वरानिव सर्पिषा।। (13)

जैसे कोई ज्वर वाला प्राणी घी को खाकर या चिपड़कर अपने को स्वस्थ मानने लग जाय उसी प्रकार कोई एक मनुष्य मुश्किल से पैदा किये गये तथा जिसकी रक्षा करना कठिन है और फिर भी नष्ट हो जाने वाले हैं, ऐसे धन आदि को से अपने को सुखी मानने लग जाता है।

अर्थस्योपार्जने दुःखमपर्जितस्य च रक्षणे।
आये दुःखं व्यये दुःखं, धिगर्थ दुःखभाजनम्।।

धन अर्जित करने में दुःख उसकी रक्षा करने में दुःख उसके जाने में दुःख, इस तरह हर हालत में दुःख के कारण रूप धन को धिक्कार हो।

दहनस्तृणकाष्ठसंचयैरपि तृप्येदुदधिर्नदीशतैः।
न तु कामसुखैः पुमानहो, बलवत्ता खलु कापि कर्मणः।।

यद्यपि अग्नि, घास, लकड़ी आदि के ढ़ेर से तृप्त हो जाय। समुद्र, सैंकड़ों नदियों से तृप्त हो जाय, परन्तु वह पुरुष इच्छित सुखों से कभी भी तृप्त नहीं होता। अहो! कर्मों की कोई ऐसी ही सामर्थ्य या जबर्दस्ती है।

निरन्तर चिन्तवन करने योग्य चार भावनाएँ
मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च
सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनेयेषु।।(11)

(We must meditate upon the 4 following :

1. मैत्री Maitri, Benevolence (for) सत्त्वेषु all living belongs;

2. प्रमोद Delight (at the sight of beings) गुणाधिकेषु better qualified (or more advanced then ourselves on the path of liberation;

3. कारुण्य Pity, Compassion (for) क्लिश्यमानेषु the afflicted;

4. माध्यस्थ Tolernce of indifference (to those who are) अविनयेषु uncivil or ill behaved.

प्राणी मात्र में मैत्री, गुणाधिकारों में प्रमोद, क्लिश्यमानों में करुणावृत्ति और अविनेयों में माध्यस्थ भावना करनी चाहिए।

(1) ***मैत्री****-दूसरों के दुःख की अनुत्पत्ति की अभिलाषा मैत्री भाव है। स्वकीय काय, वचन, मन, कृत, कारित और अनुमोदना के द्वारा दूसरे को दुःख न होने देने की अभिलाषा, मित्र का धर्म अथवा कर्त्तव्य मैत्री है।*

(2) ***प्रमोद****-मुख की प्रसन्नता आदि के द्वारा प्रकट होने वाली अंतर्भक्ति और*

राग प्रमोद है। मुख की प्रसन्नता, नयनों का आह्लाद, रोमांच का उद्भव, स्तुति, निरन्तर सद्गुणकीर्तन आदि के द्वारा प्रकट होने वाली अंतरंग की भक्ति और राग तथा विशेष रीति से जो मोद (प्रसन्नता) होता है उसे प्रमोद कहते हैं।

(3) **कारुण्य**-दीनों के प्रति अनुग्रह भाव कारुण्य है। शारीरिक और मानसिक दुःख से दुःखी, दीन (अनाथ) प्राणियों के प्रति अनुग्रहात्मक परिणाम करुणा है और करुणा का भाव या कर्म कारुण्य कहलाता है।

(4) **माध्यस्थ**-राग-द्वेषपूर्वक पक्षपात का अभाव माध्यस्थ है। राग और द्वेष से किसी के पक्ष में पड़ना पक्षपात है। उस राग-द्वेष के अभाव से मध्य में रहना मध्यस्थ है तथा मध्यस्थ का भाव या कर्म माध्यस्थ भाव है।

(5) **सत्त्व**-अनादि कर्मबंधन के वश से जो दुःखी होते हैं, वे सत्त्व हैं। अनादिकालीन अष्टविध कर्मबंध संतान से तीव्र दुःख की कारणभूत चारों गतियों में जो दुःख उठाते हैं, वे सत्त्व कहलाते हैं।

(6) **गुणाधिक**-सम्यग्ज्ञानादि गुणों से प्रकृष्ट को गुणाधिक कहते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आदि गुण हैं, वे गुण जिनके अधिक हैं, वे गुणाधिक कहलाते हैं।

(7) **क्लिश्यमान**-असाता वेदनीय कर्म के उदय से संतप्त क्लिश्यमान है। असाता वेदनीय कर्म के उदय से जो शारीरिक और मानसिक दुःखों (आधि-व्याधि) से संतप्त हैं, वे क्लिश्यमान हैं।

(8) **अविनेय**-तत्त्वार्थोपदेश के श्रवण-ग्रहण के द्वारा असम्पादित गुण वाला अविनेय है। न विनेय अविनेय है। अर्थात् विपरीत वृत्ति वाले अविनेय हैं।

(9) **विनेय**-तत्त्वार्थ का उपदेश श्रवण करने और उसे ग्रहण करने के जो पात्र होते हैं, उन्हें विनेय कहते हैं।

इस सत्त्वादि में मैत्री आदि भावना यथाक्रम भानी चाहिये। जैसे- 'मैं सब जीवों के प्रति क्षमा भाव रखता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें। मेरी सब जीवों से प्रीति है, किसी के साथ वैरभाव नहीं है।' इत्यादि प्रकार से जीवों के प्रति मैत्री भावना भानी चाहिये। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रादि गुणाधिकों के प्रति वन्दना, स्तुति, वैयावृत्तिकरणादि के द्वारा प्रमोद भावना भानी चाहिये। मोहाभिभूत, कुमति, कुश्रुत और विभंगावधिज्ञान से युक्त विषय तृष्णा रूपी अग्नि के द्वारा दह्यमान मानस वाले, हिताहित से विपरीत प्रकृति करने वाले, विविध दुःखों से पीड़ित दीन, अनाथ, कृपण,

बालवृद्ध आदि क्लिश्यमान जीवों में करूणा भाव रूपी भावना भानी चाहिये। ग्रहण, धारण, विज्ञान और ऊहापोह से रहित महामोहाभिभूत, विपरीत दृष्टि और विरुद्ध वृत्ति प्राणियों में माध्यस्थ भावना रखनी चाहिये। ऐसा समझ लेना चाहिए कि ऐसे जीवों में वक्ता के हितापदेश की सफलता नहीं हो सकती। इस प्रकार भावना भाने वालों के अहिंसादि व्रत परिपूर्ण होते हैं।

संसार और शरीर के स्वभाव का विचार

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम्।।(12)

For ***संवेग*** Samvega, the apprehension of the miseries of the world and ***वैराग्य*** Vairagya, non attachment to sense pleasures (we should meditate upon) the nature of the world and of our physical body.

संवेग और वैराग्य के लिए जगत् के स्वभाव और शरीर के स्वभाव की भावना करनी चाहिए।

अपने स्वरूप में होना (रहना) स्वभाव है। अर्थात् स्वकीय असाधारण धर्म में स्थिर होना स्वभाव कहा जाता है। जगत् और काय जगत्काय, जगत्काय का स्वभाव जगत्काय स्वभाव।

विविध प्रकार की वेदना से अभिव्याप्य (आकारभूत) शरीर से भीरूता, संवेदन संवेग कहलाता है।

राग के कारणों का अभाव होने से, विषयों से विरक्त होना वैराग्य है। चारित्र मोह के उदय का अभाव होने पर वा होने वाले चारित्र मोह के उपशम, क्षय और क्षयोपशम से शब्दादि पंचेन्द्रियों के विषयों से विरक्त होना विराग है, ऐसा जाना चाहिये। विराग का भाव या कर्म वैराग्य कहलाता है। संवेग और वैराग्य, संवेगवैराग्य। संवेग और वैराग्य के लिये जगत् और काय के स्वभाव का विचार करना चाहिये। तद्यथा-जगत्स्वभाव, आदिमान् और अनादिमान् परिणाम वाले द्रव्यों का समुदाय ही संसार है, जो तालवृक्ष के आकार वाला है, अनादिनिधन है। इस संसार में ये जीवात्माएँ देव, नारकी, मानव और तिर्यंच स्वरूप चारों गतियों में अनेक प्रकार के दुःखों को भोग-भोगकर परिभ्रमण कर रही है। इसमें कोई भी वस्तु नियत वा स्थिर नहीं है। जीवन जल बुदबुद के समान चपल है, भोग-सम्पदा विद्युत और मेघ के समान क्षणभंगुर है, इस प्रकार जगत् के स्वभाव का विचार करना चाहिये। शरीर

अनित्य है, दुःख का हेतु है, निस्सार है और अशुचि है इत्यादि भावना शरीर का विचार है। इस प्रकार शरीर और संसार की भावना भाने वाले के संवेग उत्पन्न होता है। इस तरह आरम्भ-परिग्रह में दोष दृष्टिगोचर होने से आरम्भ एवं परिग्रह से विरति होना धर्म है और धर्म से धर्म में, धार्मिकों में, धर्मश्रवण में और धार्मिक-दर्शन में बहुमान होता है (आदरभाव होता है), उनके प्रति मानसिक आह्लाद होता है। उत्तरोत्तर गुणों में की प्रतिपत्ति (प्राप्ति) में श्रद्धा और वैराग्य होता है। यही संसार-शरीर - भोगोपभोग वस्तु से निर्वेद होता है तथा भावना भाने वाला मानव अच्छी तरह से व्रतों का पालन करता है।

हिंसा पाप का लक्षण

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा। (13)

By *(प्रमत्तयोग)* Passional vibrations, *(प्राणव्यपरोणं)* the hurting of the vitalities, (is) *(हिंसा)* injury.

प्रमत्तयोग से प्राणों का वध करना हिंसा है।

अनवगृहीत प्रचार विशेष को प्रमत्त कहते हैं। इन्द्रियों के प्रचार विशेष का निश्चय न करके जो प्रवृत्ति होती है वा बिना विचार जो प्रवृत्ति होती है, वह प्रमत्त है। जैसे सुरा (मदिरा) पीने वाला मदोन्मत्त होकर कार्य-अकार्य, वाच्य-अवाच्य से अनभिज्ञ रहता है, कार्य-अकार्य, वाच्य-अवाच्य को नहीं जानता है उसी प्रकार प्रमत्त वाला जीवस्थान, जीवोत्पत्तिस्थान और जीवाश्रयस्थान को नहीं जानने वाला अविद्वान् (मूर्ख प्राणी) कषाय के उदय से आविष्ट होकर हिंसा के कारणों में व्यापार करता है, उनमें स्थित रहता है परन्तु सामान्यतया अहिंसा में प्रयत्नशील नहीं होता है। अतः मदोन्मत्त के समान होने से प्रमत्त कहलाता है। (इसमें 'मदोन्मत्त इव' अर्थ गर्भित) है।

अथवा पन्द्रह प्रमाद से परिणत होने से भी प्रमत्त कहलाता है। चार विकथा, चार, कषाय, पाँच इन्द्रियाँ, निद्रा और प्रणय इन पन्द्रह प्रमादों से जो परिणत (युक्त) होता है वह प्रमत्त कहलाता है।

काय वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं। प्रमत्त-प्रमाद परिणत व्यक्ति के योग को प्रमत्त योग कहते हैं। 'प्रमत्तयोगात्' यह हेतु अर्थ में पंचमी है अतः प्रमत्तयोग के कारण प्राणों का व्याघात करना हिंसा है, इसमें प्रमत्तयोग कारण है (भाव हिंसा है) और प्राण का व्याघात कार्य (द्रव्य हिंसा) है।

'व्यपरोपण' का अर्थ वियोग करना है। व्यपरोपणं, वियोगकरण वे एकार्थवाची हैं, प्राणों का लक्षण पंचम अध्याय में कहा है, उन प्राणों का व्यपरोपणं प्राणव्यपरोपंण है।

प्राणों का व्याघात प्राणपूर्वक होता है अतः प्राण का ग्रहण किया गया है। प्राणों के वियोगपूर्वक ही प्राणी का वियोग होता है, क्योंकि स्वतः प्राणी निरवयव है, अतः उसके वियोग का अभाव है।

पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में हिंसा का व्यापक स्वरूप का अनूठा वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है।

हिंसा का व्यापक स्वरूप

आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात् सर्वमेव हिंसैतत्।
अनृतवचनादिकेवमुदाहृतं शिष्यबोधाय।।(42)

आत्मा के परिणामों की हिंसा होने के कारण से यह सब ही हिंसा है; असत्य वचनादि केवल शिष्यों को बोध करने के लिये कहे गये हैं।

हिंसा का लक्षण

यत्खलु कषाययोगात् प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम्।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा।। (43)

निश्चय करके कषाय सहित योगों से द्रव्य और भावरूप प्राणों का जो नष्ट करना है वह निश्चित रूप से हिंसा होती है।

अहिंसा और अहिंसा का लक्षण

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।।(44)

निश्चय करके रागादिक भावों का उदय में नहीं आना अहिंसा कहलाती है, इसी प्रकार एवं उन्हीं रागादिक भावों की उत्पत्ति का होना हिंसा है इस प्रकार जिनागम का अर्थात् जैन सिद्धान्त का सारभूत रहस्य है।

वीतरागी को हिंसा नहीं लगती

युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यवेशमंतरेणापि।
न हि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणादेव।। (45)

योग्य आचरण वाले अर्थात् यत्नाचार-पूर्वक सावधानी से कार्य करने वाले सज्जन पुरुष को रागादि रूप परिणामों के उदय हुए बिना प्राणों का घात होने मात्र से कभी निश्चय करके हिंसा नहीं लगती है।

सरागी को बिना प्राण घात के भी हिंसा लगती है

व्युत्थानावस्थायां रागादीनां वशप्रवृत्तायाम्।
म्रियतां जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुवं हिंसा।। (46)

रागादिकों के वश में प्रवर्तित प्रमाद अवस्था में जीव मर जाय अथवा नहीं मरे नियम से हिंसा आगे दौड़ती है।

इसमें हेतु

यस्मात्सकषायः सन् हन्त्यात्मा प्रथममात्मनात्मानं।
पश्चाज्जायते न वा हिंसा प्राणयंताराणां तु।। (47)

क्योंकि आत्मा कषाय सहित होता हुआ पहले अपने ही द्वारा अपने आप को मार डालता है, पीछे दूसरे जीवों की हिंसा हो अथवा नहीं हो।

प्रमादयोग में नियम से हिंसा होती है

हिंसायामविरणं हिंसापरिणमनमपि भवति हिंसा।
तस्मात्प्रमत्तयोगे प्राणव्यपरोपणं नित्यं।। (48)

हिंसा में विरक्त न होना तथा हिंसा में परिणमन करना हिंसा कहलाती है इसलिये प्रमाद योग में नियम से प्राणों का घात होता है।

समय का उपयोग

सम्माइट्ठी कालं बोलइ वेरग्गणाण भावेण।
मिच्छा इट्ठी वांछा खवई दुब्भावालस्स कलेहेंहि।।57।।

अर्थः सम्यक् दृष्टि जीव (पुरुष) अपने समय वैराग्य और ज्ञान में व्यतीत करता है परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव वांछा, दुर्भाव, आलस, और कलह करने में जीवन को खो देता है।

भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल

अजवसप्पिणि भरहे पउरा रुद्दट्ठ झाणया दिट्ठा।
णठ्ठा दुट्ठा कट्ठा पाविट्ठा किण्हानील काऊदा।।58।।

अर्थ : इस भरत क्षेत्र के अपसर्पिणी पंचम काल में आर्तध्यानी रुद्रपरिणामी कृष्णादि अशुभ लेश्या के धारक क्रूर स्वभाव वाले नष्ट, दुष्ट, पापिष्ट और कठोर भावों को धारण करने वाले मनुष्य अधिकतर उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ : इस समय दुस्सम पंचमकाल में भरत क्षेत्र में मिथ्यादृष्टियों की प्रचुरता है। कोई भव्य जीव स्वर्ग से पूर्व सुकृत संस्कार के बल से क्षयोपशम औपशमिक सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाले जीव बहुत कम होते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीवों की दुर्लभता

अज्जवसप्पिणि भरहे पंचमकाले मिच्छ पुव्वया सुलया।
सम्मत्तपुव्व सायारणयारा दुल्लहा होंति।।51।।

अर्थ : इस भरत क्षेत्र के अवसर्पिणी पंचमकाल में मिथ्यात्वी मनुष्य तो अधिक मिलेंगे। परन्तु सम्यग्दृष्टि मुनीश्वर और गृहस्थ दुर्लभ प्राप्त होते हैं।

अवसर्पिणीकाल में भी धर्म ध्यान होता है

अज्जवसप्पिणि भरहे धम्मज्झाणं पमाद रहियमिदि।
जिणुदिट्ठं णहुमण्णइ मिच्छादिट्ठी हवे सोहु।।60।।

अर्थ : इस भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी पंचमकाल में श्री मुनीश्वरों के प्रमाद रहित धर्मध्यान होता है ऐसा श्री जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। जो इसको नहीं मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।

जो रूचे सो करो-

असुहादो णिरयादो सुहभावादो दु सग्गसुहमाओ।
दुह सुह भावं जाणइ जं ते रुच्चेइ तं कुण हो।।61।।

अर्थ : अशुभ भाव से नरक तिर्यंच आदि की दुर्गति होती है। शुभ भावों से स्वर्ग के अनुपम सुख प्राप्त होते हैं। दुःख सुख शुभ अशुभ भावों को जानकर हे भव्य आत्मन् जो तुझको अच्छा लगे वह कर। इससे अधिक क्या कहे।

भावार्थ : अशुभ भाव और क्रिया करेगा तो दुःख ही मिलेगा और शुभ भाव करेगा तो सुख ही प्राप्त होगा। इसलिए तूं अशुभ भावों को त्याग कर और शुभ भावों को और शुभ कार्य को करो।

अशुभ भाव रूप परिणाम

हिंसाइसु कोहाइसु मिच्छाणाणेसु पक्खवाएसु।
मच्छरिएसु मएसु दुरिहिणिवेसेसु असुहलेसेसु।।62।।

विकहाइसु रुद्दट्ठज्झाणेसु असुयगेसु दंडेसु।
सल्लेसु गारवेसु खाइसु जो वट्टए असुह भावो।।63।।

अर्थ : हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह आदि पापाचाररूप निकृष्ट परिणाम, क्रोधमान, मायालोभ, मोहरूप परिणाम, मिथ्याज्ञान, पक्षपात, सप्ततत्त्वों के परिज्ञान में, संशय विपर्यय और अनध्यवसायरूप परिणाम, मत्सरभाव, अशुभ, लेश्या, विकथादिक प्रवृत्ति रूप परिणाम, आर्त्तरौद्र परिणाम, असूय परिणाम (दूसरों के अच्छे गुणों को सहन नहीं करने के भाव होना) निंद्य परिणाम (निन्दा करने के भाव) मिथ्या माया निदान शल्ययुक्त परिणाम, रसगारव आदि का गर्व करना अपनी पूजा प्रतिष्ठा कीर्तिमान बड़ाई के परिणाम होना इत्यादि अनेक प्रकार के दुर्भाव-अशुभ भाव करना। ये सब अशुभ कर्मों के आश्रव और बंध के कारण है।

शुभ भाव रूप परिणाम

दव्वत्थकायछप्पण तच्चपयत्थेसु सत्तणवएसु।
बंधणमोक्खे तक्कारणरूवे वारसणुवेक्खे।।64।।

रयणत्तयस्सरूवे अज्जाकम्मो दयाइसद्धम्मे।
इच्चेवमाइगो वो वट्टइ सो होइ सुहभावो।।65।।

भावार्थ : जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये छह द्रव्य, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये अस्तिकाय/जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये सात तत्त्व/जीव, अजीव पुण्य, पाप, आस्रव, बंध संवर निर्जरा और मोक्ष ये नव पदार्थ/इनमें बंध, मोक्ष के कारणों की जानकारी। बारह भावना (अनुप्रेक्षा) का चिंतन/रत्नत्रय स्वरूप को जानना। देव पूजा, दान, स्वाध्याय, सामायिक, गुरुपास्ति, संयम की नित्य क्रिया करना। दया क्षमा आदि दस सद्धर्म का पालन करना। इन सभी भाव को और क्रिया रूचि पूर्वक करता है। प्रवृत्ति रूप प्रवर्तता है। उसके शुभभाव होते हैं। ऐसी क्रिया रूप भाव को शुभ भाव कहते हैं।

निर्णय स्वयं का

सम्मत्तगुणाइ सुग्गइ मिच्छादो होइ दुग्गइ णियमा।
इदि जाण किमिह बहुणा जं ते रुच्चइ तं कुण हो।।66।।

अर्थ : सम्यग्दर्शन के प्रभाव से जीवों को नियम से शुभ गति होती है और मिथ्यात्व से नियम पूर्वक दुर्गति होती है। इसलिए हे भव्य! तुझको जो अच्छा लगे वह कर, अधिक क्या कहे।

मोही जीव के भवतीर नहीं

मोह ण च्छिज्जइ अप्पा दारूण कम्मं करेइ बहुवारं।
णहु पावइ भवतीरं किं बहु दुक्खं वहेइ मूढमई।।67।।

अर्थ : हे अज्ञानी मूढ़मति आत्मन्! तूं मोह को क्यों नहीं छोड़ता है? इस मोह के कारण ही तुझे बहुत ही बार नीच कर्मों को करके संसार भ्रमण करना पड़ रहा है। इस कारण संसार समुद्र का किनारा नहीं प्राप्त हो रहा है। तूं बहुत ही दुःख को भोग रहा।

मात्र भेष/लिंग से कल्याण नहीं

घरियउ वाहिरलिंगं परिहरियउ बाहिरक्खसोक्खं हि।
करियउ किरियाकम्मं मरिउ जमिउ वहिरप्पुजिउ।।68।।

अर्थ : बहिरात्मा जीव-सम्यक्त्व रहित बाह्य लिंग को धारण कर अर्थात् मुनि अवस्था को धारण करता है और प्रकट रूप से इन्द्रियों के बाह्य सुख का त्याग करता है, अनेक प्रकार के बाह्य कठिन व्रताचरण करता है परन्तु फिर भी बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव जन्म मरण के दारूण दुःखों को प्राप्त होता है।

मिथ्यात्व के नाश बिना मोक्ष नहीं

मोक्खणिमित्तं दुक्खं वहेइ परलोयदिट्ठितणुदिट्ठी।
मिच्छाभाव ण च्छिज्जइ किं पावइ मोक्खसोक्खं हि।।69।।

अर्थ : अज्ञान मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा जीव मिथ्यात्व भाव को छोड़ता नहीं, स्वर्ग की इच्छा करता है, अपने शरीर का पोषण करता है, मोक्ष पाने के लिए बहुत से काय क्लेश करता है, बाह्य अनेक प्रकार के तप करता है, कायक्लेश दुःखों को सहता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि को मोक्ष सुख वास्तव में कैसे प्राप्त हो सकता है? नहीं हो सकता।

बामी को पीटने से क्या लाभ?

ण हु दंडइ कोहाइं देहं दंडेइ कहं खवइ कम्मं।
सप्पो किं मुवइ तहा वम्मिउ मारिउ लोए।।70।।

अर्थ : हे बहिरात्मा तूं! जब तक क्रोध, मान, मोह आदि कषाय दुर्भावों को नहीं छोड़ता है, उनका दमन शमन नहीं करता है, और शरीर को ही उपवास आदि के द्वारा कष्ट देता है, दंड देता है, क्या इससे तेरे कर्म नष्ट होंगे? नहीं होंगे। जैसे लोक व्यवहार में सर्प के बामी पीटता जाय तो भीतर बैठा हुआ सर्प मर जायेगा? कभी नहीं मरेगा। उसी प्रकार जब तक भीतर के अपने क्रोधादि कषाय, विकार भाव, विपरीत भाव-परिणाम नष्ट नहीं होंगे, निर्मल नहीं होंगे तब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी।

संयमी कौन?

उपसम तव भाव जुदो णाणी सो भावसंजुदो होई।
णाणी कसायवसगो असंजदो होइ सो ताव।।71।।

अर्थ : उपशम भाव से व्रत तपश्चरण चारित्र आदि धारण किये जाये अर्थात् उपशम सम्यक्त्व और उपशम चारित्र को धारण करने वाला ज्ञानी जीव कषायों का उपशम होने पर वह तपस्वी भाव संयत होता है।

परन्तु कषाय के वशीभूत होकर व्रत तपश्चरण उपवास चारित्र आदि धारण किये जाये तो वे असंयमभाव को ही प्राप्त होते हैं।

ज्ञान मात्र से कर्म का क्षय नहीं हो सकता

णाणी खवेइ कम्मं णाणवलेणेदि सुबोलए अण्णाणी।
विज्जो भेसज्जमहं जाणे इदि णस्सदे वाही।।72।।

अर्थ : कोई कहता है कि ज्ञानी पुरुष ज्ञान के बल से कर्मों को नष्ट कर देता है, सो वह कहने वाला अज्ञानी है। क्योंकि बिना चारित्र के अकेले ज्ञान मात्र से कभी कर्म नष्ट नहीं हो सकते हैं। मैं वैद्य हूँ, सभी औषधि को जानता हूँ, ऐसे कहने मात्र से व्याधियाँ नष्ट नहीं होती है।

मोक्षपथ का पथ्य

पुव्वं सेवइ मिच्छामल सोहणहेउ सम्मभेसज्जं।
पच्छा सेवइ कम्मामय णासण चरिय सम्म भेसज्जं।।73।।

अर्थ : प्रथम मिथ्यात्व महा भयंकर रोग है। भव्य जीवों को सबसे प्रथम मिथ्यात्वरूपी मल का शोधन सम्यक्त्व रूपी रसायन से करना चाहिए। पश्चात् चारित्र रूपी औषध का सेवन करना चाहिए। इस प्रकार आचरण करने से चारित्र मोहनीय कर्मरूपी रोग का तत्काल ही नियमपूर्वक नाश होता है। तीर्थंकर के सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान होते हुए भी चारित्र को अपनाना ही पड़ा।

ज्ञानी और अज्ञानी

अण्णाणी विसय विरत्तादो होइ सयसहस्सगुणो।
णाणी कसायविरदो विसयासत्तो जिणुद्दिट्ठं।।74।।

अर्थ : मिथ्यादृष्टि (अज्ञानी) जीव पंचेन्द्रियों के विषय भोगों से विरक्त है और सम्यग्दृष्टि (ज्ञानी) पुरुष कषायों से विरक्त है, इनमें मिथ्यादृष्टि अज्ञानी की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि ज्ञानी हजारों गुणा सुफल को प्राप्त करता है। ऐसा श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है।

वैराग्य के बिना भाव

विणओ भत्तिविहीणो महिलाणं रोयणं विणा णेहं।
चागो वेरग्ग विणा एदेदो वारिया भणिया।।75।।

अर्थ : भक्ति के बिना विनय करना या दिखाना, स्नेह के बिना स्त्रियों का रोदन करना, वैराग्य भाव के बिना त्याग करना यह सब दिखावटी है, विडम्बना है। भक्ति प्रेम रुदन आदि छल कपट से किया जाता है वह विडम्बना है। उसी प्रकार बिना वैराग्य, अंतरंग भाव घर परिवार का त्याग कर देना यह अपनी आत्मा की, जिनेन्द्र भगवान ने कहे हुए मार्ग धर्म की विडम्बना ही है।

भाव शून्य क्रिया से अलाभ

सुहडो सूरत्त विणा महिला सोहग्गरहिय परिसोहा।
वेरग्ग णाण संजमहीणा खवणा ण किं वि लब्भंते।।76।।

अर्थ : शूरत्व शक्ति के बिना शूरवीर-सुभट कहना, स्त्री की सौभाग्यत्व के बिना शोभायमान प्रसन्न मुख नहीं दिखाई देती है। उसी प्रकार संयम ज्ञान और वैराग्य के बिना मुनीश्वर की भी यथेष्ट सिद्धि नहीं होती है।

संयम ज्ञान वैराग्य भावना से ही मुनीश्वर को मोक्ष की सिद्धि होती है।

अज्ञानी और विषयासक्त जीवों की दशा

वत्थुसमग्गो मूढो लोहिय लब्भइ फलं जहा पच्छा।
अण्णाणी जो विसयासत्तो लहइ तहा चेव।।77।।

अर्थ *: अज्ञानी मूर्ख लोभी पुरुष आरंभ लोभ कषाय आदि क्रिया परिणामों से बहुत सा धन एकत्र करता है। वस्तु की परिपूर्णता होने पर भी आगे और भी लालसा रखते हुए कमाई में लगा रहता है। कमाया हुआ धन उसका फल भी भोग नहीं सकता। उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य विषयों में आसक्त होने पर भी उसका फल प्राप्त नहीं कर सकता केवल अभिलाषा ही करता है।*

फल को कौन प्राप्त करता है?

वत्थुसमग्गो णाणी सुपत्तदाणी फलं जहा लहइ।
णाणसमग्गो विसयपरिचत्तो लहइ तहा चेव।।78।।

अर्थ *: सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष धन संपत्ति और वैभव को सुपात्र में दान देकर चक्रवर्ती तीर्थंकर इन्द्र नागेन्द्रादि पद को प्राप्त कर, समस्त भोगोंपभोगों की सामग्री सुख से भोगकर उस संपत्ति ऐश्वर्य आदि समस्त वस्तुओं का (परिग्रह का) समझकर त्याग करते हैं। दिगम्बरत्व की दीक्षा धारण कर तपस्या के द्वारा मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते हैं।*

अर्थात् परिग्रहादि भोगों से विषय कषायों से विरक्त होकर चारित्र को पालन करते हैं और कर्मों का क्षय कर उसी भव में मोक्ष जाते हैं। बाह्य परिग्रहादि वैभव और अंतरंग कषायादि परिणाम इनको त्यागते हैं, वे ही सम्यग्ज्ञानी पुरुष चारित्र को धारण कर मोक्ष सुख को पाते हैं।

सम्यग्दृष्टि के सभी कार्य अलौकिक होते हैं।

समकित-ज्ञान वैराग्य औषधि

भू महिला कणयाइ लोहाहि विसहरं कहं पि हवे।
सम्मत्तणाण वेरग्गोसहमंतेण जिणुद्दिट्ठं।।79।।

अर्थ *: भूमि-राज्य, महल, महिला स्वर्ण चाँदी आदि विभूति के लोभ, क्रोध, मान, माया के कषाय रूप जहरी सर्प के विष का विनाश निवारण के लिए सम्यग्दर्शन युक्त ज्ञान चारित्र तथा वैराग्य भावरूपी अमोघ मंत्र से ही नष्ट हो सकता है। यही फलप्रद है ऐसा श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है, उपदेश दिया है।*

मुनि दीक्षा से पूर्व 10 का मुंडन आवश्यक

पुव्वं जो पंचिन्द्रिय तणु मणु वचि हत्थपाय मुंडाउ।
पच्छा सिरमुंडाउ सिबगइ पहणायगो होइ।।80।।

अर्थ *: सबसे प्रथम अपनी पाँचों इन्द्रियों का निग्रह करना चाहिये। फिर क्रम से मन वचन काय और हाथ पैर इनको काबू में रखना चाहिए। फिर इनके बाद शिर का मुंडन करना चाहिए। इससे भव्य जीवों को मोक्षमार्ग की शीघ्र प्राप्ति होती है।*

कामासक्त पाप व दुःखों को उत्साह से करता है

(कामासक्ति से विवाह-भोगोपभोग-हिंसादि पाप व दुःख)

(चाल : आत्मशक्ति....क्या मिलिए...)

कामासक्ति में यदि इतनी शक्ति न होती,
जीव क्यों सहन करते इतने दुःख-दैन्य!?
मरना-मारना से ले आक्रमण युद्ध,
उत्सव से ले क्यों करते आत्म हत्या!?
इस शक्ति के दास होकर कामी जीव,
हित-अहित, हानि-लाभ न समझ पाते।
भावहिंसा से लेकर द्रव्य हिंसा करते,
मिठा जहर को अमृत मानकर पीते।।(1)
कामासक्त जीव मोह वेद से पीड़ित होकर,
भोगोपभोग के संकल्प-विकल्प करते।
आकर्षण-विकर्षण-संक्लेश-द्वन्द्व करते,
चिन्ता-तनाव आदि से भाव हिंसा करते।।
विवाह हेतु आरंभ से ले परिग्रह करते,
आडम्बर से अनावश्यक धन-जन व्यय।
समय-शक्ति से ले साधन-उपकरण व्यय;
फैशन-व्यसनों से ढ़ोंग-पाखण्ड।। (2)
इससे होते विविध प्रकार प्रदूषण,
शब्द-वायु-मृदा व जलादि प्रदूषण।

प्रसिद्धि-वर्चस्व-प्रतिस्पर्द्धा अन्धानुकरण,
गरीबों का अपमान से ले विविध शोषण।।
लोभ-भय व आशंकादि होते इसमें,
दहेज के कारण शोषण से प्रताड़न।
निन्दा-अपमान से ले तनाव-तलाक,
मुकदमा से ले हत्या-आत्महत्या तक।।(3)
एक बारके भोग से मरते नौलाख जीव,
वे भी लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय मानव।
अथवा नौलाखकोटी ऐसे जीव मरते,
अनेक बार में मारते ऐसे असंख्य जीव।।
और भी उत्तरोत्तर आरंभ-परिग्रह चाहिए,
दम्पत्ति से लेकर सन्तति हेतु भी चाहिए।
पालन-पोषण व सुरक्षा संवर्द्धन हेतु;
उक्त पाप-ताप-बढ़ते संसार भ्रमण हेतु।।4।।
तो भी कामासक्त जीव होते मदमस्त,
जीवन होता अस्त-व्यस्त-संत्रस्त।
तथापि मानते विवाह वर्ष का उत्सव;
दुःख न चाहते तो भी मानते दुःख उत्सव।।
ज्ञान-वैराग्य सम्पन्न जीव होते सुखी,
ब्रह्मचर्य से पाते उक्त दुःखों से मुक्ति।
आत्म साधना से वे बनते परमात्मा,
'कनक' का लक्ष्य बनना परमात्मा।।(5)

ओबरी 06.03.2018 रात्रि 08:53

अब तक महिलाओं की अधिकतम औसत उम्र 98 साल और पुरुषों की 96 साल रही है

स्मोकिंग 5 गुना कम की तो औसत उम्र 2 साल बढ़ी, महिलाओं के बराबर उम्र पाने के करीब पहुँचे पुरुष

लंदन। 177 साल में पहली बार दुनिया भर की महिलाओं और पुरुषों की उम्र बराबर होने के करीब पहुँच गई है। लंदन के कास बिजनेस स्कूल ने ये अध्ययन किया है। अब तक महिला और पुरुषों की अधिकतम औसत उम्र में 2 साल तक का अंतर बरकरार रहा है। अब शोध में पता चला है कि ये अंतर खत्म हो रहा है और 2030 तक पूरी तरह खत्म हो जाएगा। अब तक महिलाओं की अधिकतम औसत उम्र 98 साल और पुरुषों की अधिकतम औसत उम्र96 साल है। अब ये अंतर खत्म होने के करीब पहुँच रहा है। वजह है- पुरुषों का स्मोकिंग कम करना। पिछला सर्वे 1969 में हुआ था। तब से अब तक पुरुषों में स्मोकिंग की लत 5 गुना तक कम हुई है। इस वजह से इन 49 साल में उनकी उम्र भी 2 साल से ज्यादा बढ़ी है। पुरुषों और महिलाओं की उम्र की तुलना करता ये सर्वे 1841 में शुरु किया गया था। इन 177 साल में एक बार भी पुरुषों की उम्र महिलाओं से ज्यादा नहीं हो पाई। अध्ययन के मुताबिक - 'अब तक सबसे ज्यादा जीने वाले 5 प्रतिशत पुरुषों की औसत उम्र 96 वर्ष रहा करती थी, वहीं सबसे ज्यादा जीने वाली 5 प्रतिशत महिलाओं की औसत उम्र 98 साल। वहीं पुरुषों की औसत न्यूनतम उम्र 62 साल, जबकि महिलाओं की 70 साल थी। नॉन-स्मोकर्स की उम्र स्मोकर्स की तुलना में 10 साल ज्यादा होती है।'

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद पुरुषों में स्मोकिंग की आदत सबसे ज्यादा बढ़ी थी: 1969 में उनकी उम्र महिलाओं की तुलना में सबसे कम हुई

स्टडी में बताया गया है कि - द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दुनिया भर में तनाव काफी बढ़ गया था। इससे पुरुषों में स्मोकिंग की आदत भयानक रूप से बढ़ गई। 1945 के बाद एक वक्त तो मेल स्मोकर्स 80 प्रतिशत तक पहुँच गए थे, जबकि फीमेल स्मोकर्स 40 प्रतिशत तक थीं। नतीजा ये हुआ कि 1969 तक पुरुषों की उम्र महिलाओं की तुलना में 5 साल 8 महीने कम हो गई। इसके बाद स्थिति में सुधार हुआ और अब दुनिया में मेल-फीमेल स्मोकर्स 16-16 प्रतिशत ही हैं।

मैथुन रूपी हिंसा

यद् वेद राग-योगात्, मैथुनमभिधीयते तदब्रह्म।
अवतरति तत्र हिंसा, वधस्य सर्वत्र सद्भावात्।।107।।

Abrahm is copulation arising from sexual desire. It is attended

with the killing of life all round, and Himsa is therefore present in the act.

व्याख्या भावानुवाद : जो वेद राग के योग से मैथुन किया जाता है वह अब्रह्म है। उस अब्रह्मचर्य में भी हिंसा का सद्भाव है क्योंकि उस अब्रह्मचर्य में सर्वत्र प्राणवध का सद्भाव होता है। क्योंकि अहिंसादि गुण जिससे वृद्धि को प्राप्त होते हैं उसे ब्रह्म कहते हैं। नहीं है ब्रह्म वही अब्रह्म है अर्थात् कुशील। मैथुन में प्रवर्तन करने वाले जीव हिंसादि को करता है। स्थावर त्रस जीवों को मारता है। अतएव हिंसा के कारण होने से अब्रह्म त्याज्य है।

मैथुन में द्रव्य हिंसा

हिंस्यन्ते तिल नाल्यां तप्तायसि विनिहिते तिला यद्वत्।
बहवो जीवा योनौ हिस्यन्ते मैथुने तद्वत्।।108।।

Just as a hot rod of iron burns up the sesamum seed filled in a tube in which it is introduced, in the same way many beings are killed in the vagina during copulation.

व्याख्या भावानुवाद : जिस प्रकार तिल से भरी हुई नाली (घानी) में तपाए हुए लोहे को डालने पर तिल जल जाते हैं उसी प्रकार मैथुन में स्त्री योनि में स्थित असंख्यात कोटि जीव मरते हैं। इसी प्रकार दोनों कुक्षी, नाभि, स्त्री वेद चिन्ह इत्यादि अशुभ स्थान में जो जीव उत्पन्न होते हैं हस्तादि व्यापार से वे जीव भी मरते हैं। अतः मैथुन में असत्य, चोरी दोनों प्रकार के परिग्रह भी होते हैं। अतएव अब्रह्म त्याज्य है।

समीक्षा : टीकाकार ने अब्रह्मचर्य से असत्य, चोरी और दोनों प्रकार के परिग्रह भी माना है। इसका कारण यह है कि अब्रह्म आत्मा के विपरीत स्वभाव होने से असत्य है, स्व स्वभाव से च्युत होकर दूसरे के शील धर्म को अपहरण करने के कारण चोरी है। वेद का भाव अंतरंग परिग्रह है और अन्य पुरुष या स्त्री बहिरंग परिग्रह है। इतना ही नहीं राग भाव अंतरंग हिंसा है तो जीवों का हनन द्रव्य हिंसा है। इस प्रकार अब्रह्मचर्य से हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह ये पाँचों पाप हो जाते हैं।

अनंग रमण भी हिंसा

यद्यपि क्रियते किंचित् मदनोद्रेकादनंग-रमणादि।

तत्राऽपि भवति हिंसा रागाद्युत्पत्ति-तंत्रत्वात्।।109।।

Again whatever indulgence of the sex-passion is had in unnatural ways on account of lust, it always brings about Himsa because it has had its rise in desire etc.

व्याख्या-भावानुवाद : जो वेद राग उदय से अर्थात् कामदेव-ज्वर अधिकता से हस्त मैथुन, वीर्य मोचन, मुख कक्ष आदि में लिंग स्थापन रूप अनंग क्रीड़ा है उसमें भी हिंसा होती है क्योंकि उसमें भी रागादिक की उत्पत्ति होने के कारण अर्थात् रागादि के अधीन यह कार्य होने से।

समीक्षा : मैथुन यदि दूसरों से न करके स्वयं ही स्वयं करता है उसमें भी हिंसा होती है क्योंकि उसमें भी मैथुन रूपी राग भाव होता है और यह भाव ही हिंसा है।

परस्त्री रमण त्याग

ये निज कलत्रमात्रं परिहर्त्तुं शक्नुवन्ति नहि मोहात्।
निःशेष शेष योषिन् निषेवणं तैरपि न कार्यम्।।110।।

Those, who, because of attachment, cannot renounce their own wives, they also should totally abstain from enjoying other females.

व्याख्या-भावानुवाद : जो पुरुष मोह के कारण स्व-स्त्री का सेवन त्याग नहीं कर सकता है उसके द्वारा भी समस्त पर स्त्रियों का सेवन नहीं करना चाहिये।

समीक्षा : काम चेतना प्राणी मात्र में एक दुर्दयनीय विकार भाव है। काम प्रवृत्ति से आत्मा की ऊर्जा क्षीण हो जाती है। ऊर्जा क्षीण होने से मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक शक्ति भी क्षीण हो जाती है। जिससे मनुष्य में उत्साह, धैर्य, ज्ञान, विज्ञान, विवेक, संयम आदि नष्ट हो जाते हैं। जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिये, स्वास्थ्य संपादन करने के लिये, आजीवन युवक रहने के लिये, बौद्धिक शक्ति का विकास करने के लिये नयी-नयी प्रज्ञा प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिंतामणि के समान है।

केवल शारीरिक मैथुन त्याग से ब्रह्मचर्य पूर्ण नहीं होता है, उसके साथ-साथ मन से कामवासना त्याग, वचन से कामकथा त्याग, तथा कृत, कारित, अनुमोदना से मैथुन त्याग करने से ब्रह्मचर्य पूर्ण होता है। जो वीर्य प्रायः 42 दिन में तैयार होता है, वही वीर्य एक बार के भोग से क्षय हो जाता है। इससे आप लोग अनुमान कर सकते

हैं कि अब्रह्मचर्य (मैथुन) से कितनी क्षति होती है। उस क्षति को पूर्ण करने के लिये पुनः 42 दिन चाहिये। ''बिन्दु पात हि मरणम्'' अर्थात् वीर्य स्खलन ही मरण है।

अब्रह्मचर्य का दुष्परिणाम : एक बार भोग के समय में संभोग क्रिया से लब्ध्यपर्याप्तक नवलक्ष (9 लाख) जीव मरण को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे सरसों से भरे पात्र में एक तप्त लोहखण्ड डालने से सब सरसों जल जाते हैं उसी प्रकार नवलक्ष लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय मनुष्य जातीय जीव भस्म हो जाते हैं। यह हुई द्रव्य जीव हिंसा। द्रव्य हिंसा के साथ में जो मैथुन-भोग भोगने का मानसिक मलिन विचार है वह भाव हिंसा है। इस सारे पाप का फल इस भव में नहीं तो अगले भव में निश्चित भोगना पड़ेगा। इस पाप से अब्रह्मचारी छूट नहीं सकता है।

ब्रह्मचर्य का फल :

आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि ''त्रिलोक्य पूज्य भवति ब्रह्म'' तीन लोक में पूज्य ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य पूर्ण रूप से पालन करना सबके लिए संभव नहीं है, तथापि स्व स्त्री या स्व-पति से ही संतोष रखना उसमें भी संयमित रूप से केवल योग्य संतान की उत्पत्ति के लिये भोग करना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।

स्त्री को कम से कम18 वर्ष तक एवं पुरुष को कम से कम 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य से रहकर विद्या-अध्ययन करना चाहिये। उसके पश्चात् रज एवं वीर्य पक्व हो जाता हैं जिससे योग्य, बलिष्ट, तेजस्वी, धर्मात्मा संतान उत्पन्न होती है। ऋतु स्नान में भोग करना सर्वथा त्यजनीय है। उससे ओज-वीर्य, आयु आदि घटती है। अनेक महा रोग शरीर में प्रवेश करने लगते हैं। वह रोग वंश-परम्परा से आगे चलकर अपने परिवार-संतान के ऊपर गलत प्रभाव डालता है। यदि संतान-परम्परा के ऊपर दया करुणा भाव है तो इन दिनों में भोग नहीं करना चाहिये। ऋतु स्नान से चौथे दिन से 16 दिन तक भोग का समय है। उसमें भी अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या एवं पर्व आदि दिनों में भोग नहीं करना चाहिए। दिन में भोग करने से आयु क्षीण हो जाती है। अतः दिन में भोग वर्जनीय है। ग्रीष्म ऋतु में भी विशेष भोग नहीं करना चाहिए। ऋतु स्नान से लेकर 16 दिनों में किया हुआ स्त्री संबंध ही गर्भ धारण करने का कारण हो सकता है। अतः सोलह दिन से आगे ऋतु स्नान तक स्त्री संबंध आयुर्वेद में वर्जनीय है। इस प्रकार संयमित जीवन-यापन करने पर कम एवं योग्य संतान होगी जो कि सर्वगुण सम्पन्न तथा निरोगी होगी। वर्तमान में संयमित जीवन के अभाव में ही तेज

हीन (शरीर कांति) वीर्य हीन, अवांछित अधिक सन्तान की उत्पत्ति होती है जिससे स्वयं माता-पिता एवं सरकार भी चिंतित है। उसका निरोध करने के लिये अनैतिक साधन के माध्यम से गर्भ निरोध सरकार कर रही है। इससे शील को ही तिलांजलि दे दी है। कोई किसी से भोग करने पर भी गर्भ नहीं रहने के कारण पता नहीं चलता है, जिससे अनैतिकता, अकुशलता, पापाचार बढ़ रहा है। इसलिए सुखमय जीवन-यापन करने के लिये ब्रह्मचर्य अणुव्रत पालन करना सबके लिये परम कर्त्तव्य हो जाता है। ब्रह्मचर्य अणुव्रत भारत की एक प्राकृतिक, वैज्ञानिक जन्म निरोध प्रणाली है। इसको अपनाने से जन्म निरोध अर्थात् कुटुम्ब नियोजन प्रणाली तथा अर्थव्यय सब रुक जायेंगे।

जो पर स्त्री गमन करता है या जो स्व-स्त्री से अधिक लम्पटता से भोग करता है वह पर भव में नपुंसक बनेगा। पुरुष बना तो लिंग में अनेक रोग उत्पन्न होंगे। परभव में तेजहीन, वीर्यहीन, दुर्बल शरीर मिलेगा। अभी भी अनेक लोग टी.बी. के रोग से ग्रस्त दिखते हैं और अनेक चर्म रोग ब्लड् दूषित होने से रोगी दिखते हैं। ये प्रायः अधिक भोग करने से ही हुये हैं। अतः ऐसी दुःखदायी अवस्था से बचना हो तो ब्रह्मचर्य ही एकमात्र श्रेयस्कर है।

वेश्या को पण्य स्त्री भी कहते हैं। वे स्त्रियाँ पैसा लेकर अपने शील को पर पुरुष को बेचती हैं। रूपयों के लोभ से वे रोगी, पापी, हीन, दीन व्यक्तियों के साथ भी भोग करती हैं जिससे उन की योनि में अनेक संक्रामक रोग होते हैं। उनके साथ जो भोग करता है उसके लिंग में रोग हो जाता है जिससे मरण काल के समान तीव्र वेदना होती हैं। वह पर स्त्री गामी पुरुष लज्जा के कारण किसी को उस रोग के बारे में नहीं बताता है, जिससे उसका औषध-पानी होना भी कठिन हो जाता है। इस प्रकार वह पुरुष रूपया देकर रोगों को खरीदता है। उसे सब कोई घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वेश्या में आसक्त होकर अपनी सारी सम्पत्ति दे डालता है। जिससे गरीबी के दिन गुजारता है। परिवार के लोगों को कष्ट में डालता है। तद्भव मोक्षगामी स्वाध्याय प्रेमी, ज्ञानी चारुदत्त जिसने विवाह के पश्चात् अपनी नवयुवती सुन्दरी स्त्री को देखा तक भी नहीं था वही चारुदत्त वसंतसेना नाम की वेश्या के कारण 12 वर्ष तक वेश्या के घर में रहा और 32 करोड़ स्वर्ण दीनारें खो डाली एवं अन्त में संडास गृह में उसे डलवा दिया गया। इस प्रकार धन, यौवन, धर्म, स्वास्थ्य, शील आदि को नाश करने वाला वैश्यागमन का त्याग करना चाहिये।

महान् दुःख की बात है कि कुछ प्रादेशिक सरकार के द्वारा (महाराष्ट्र सरकार आदि) वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देने के कारण वेश्याओं की संख्या बढ़ रही है। विवेकी सरकार तथा जनता को चाहिये कि इस का पूर्णरूप से विरोध करें जिससे देश में शील, न्याय, नीति कायम रहे।

वेश्या के यहाँ आना-जाना उसका सहवास करना, वेश्याओं का नृत्य देखना उसका गाना सुनना, उससे लेन-देन करना आदि वेश्या गमन के ही अंग है।

वेश्यागमन का दुष्परिणाम :-

जो भौतिकवाद, विलासप्रिय अमेरिका आदि देश शील का मखौल उड़ाते थे, वे आज एड्स रोग के कारण शील को महत्त्व देने लगे हैं। नीतिकारों ने कहा है - ''आर्त्त नराः धर्म परा भवन्ति'' दुःखी जन धर्मपरायण होते हैं।

दुःख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, तो दुःख काहे को होय।।

यह एड्स रोग वेश्यागमन से होता है। इसका वर्णन नव भारत टाइम्स में 29 मई 1988 में आया हुआ विषय यहाँ उद्धृत कर रहे हैं।

लेख का नाम ''यौन क्रांति का अंत''। जान देने और दिल लुटाने के मुहावरे आज सच्चे बन गए हैं। मनचलों की दुनिया में खलबली मच गई है। रंगीन रातें संगीन बनती जा रही हैं। लाल बत्ती वाले इलाकों में आशिक और माशूक बे-मौत मारे जा रहे हैं। तमाम वेश्याएँ विष कन्याओं में बदलती जा रही हैं। पर किया प्रेम की दुहाई देने वाले घर लौट रहे हैं। कौमार्य और ब्रह्मचर्य जैसी गई-गुजरी बातें फिर से श्रद्धा की पात्र हो गई हैं। जो पश्चिमी देश आधुनिकता के नाम पर उन्मुक्त यौन उत्श्रृंखलता में आकंठ डूबे हुए थे, वे आज अपने किए पर पछता रहे हैं तथा कथित यौन क्रान्ति आखरी सांसें गिन रही है।

यह अजीब जीव एक किस्म का वायरस यानी विषाणु है। जितना छोटा उतना खोटा है। यह वायरस इतना छोटा है कि इसका व्यास 100 नेनो मीटर या 0.1 माइक्रो मीटर मापा गया है। ऐसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव ने आज लगभग 133 देशों में एड्स का असाध्य रोग फैलाकर ऐसी दहशत पैदा की है कि उसके सामने परमाणु युद्ध का आतंक भी नहीं रह गया है। इस रोगाणु की शोध 1983 में पेरिस में डॉक्टर लुक मोटारनीर ने और 1984 में अमेरिका के डॉक्टर रॉबर्ट गैली ने किया था।

एड्स का वायरस आधुनिक समाज में व्याप्त हिंसा और आतंक का मानो वामन अवतार है। एड्स का वायरस मानव देह के अन्दर खून में पलता है। पहले यह हमारे खून की प्रतिरक्षा प्रणाली के पहरेदारी को दबोचता है, उसके बाद चाहे फ्लू हो या निमोनिया किसी भी रोगाणु के खिलाफ रोगी के खून में ऐंटीबॉडी नहीं बनती Resistance grow नहीं करता है। एक बार पूरे खून में एड्स के विषाणु फैल जाएँ तो चन्द महीनों में ही मौत रोगी को अपने पंजे में दबोच लेती है। अमेरिका में शताधिक ब्लू फिल्मों के बेताज बादशाह माने जाने वाले जॉन हेल्मस का 14000 रमणियों का रिकॉर्ड है, जुलाई 1986 एड्स के वायरस के चपेट में आये और मार्च 1988 में निमोनिया ने प्राण लिये। अल्सर, अतिसार, बुखार, और वजन घटते जाने से एड्स के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। धीरे-धीरे ओजहीन होता हुआ एड्स रोगी सूखकर काँटा हो जाता है। एड्स का वायरस सबसे पहले दिमाग पर हमला बोलता है और रोगी इसका शिकार हो जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार अकेले अफ्रीकी देशों में ही 20 लाख से अधिक स्त्री-पुरुषों के देह में एड्स का वायरस पल रहा है। सारी दुनिया में 50 लाख से 1 करोड़ लोग इस घातक वायरस के शिकार से जीते-जागते मनमाने घूम रहे हैं। इनमें 15 लाख अकेले अमेरिका में है।

युनिसेफ की ताजा रिपोर्ट के अनुसार अगले दशक में 50 लाख से 3 करोड़ तक बच्चे भी एड्स के शिकार हो जायेंगे। इस समय भी 6 हजार बच्चे जाम्बिया में और 14000 अमेरिका में एड्स से पीड़ित हैं, इनको यह रोग माता-पिता से लगा है। स्तनपान से उतना खतरा नहीं है। केवल दो बच्चों को यह रोग एड्स ग्रस्त माँ के स्तनपान से पहुँचा है। रक्त शुक्राणु और खराब सूइयों के कारण भी एड्स फैलता है।

तथा कथित यौन-क्रान्ति आखिरी साँसे गिन रही हैं। दुनिया भर के दुराचार के अड्डों में सनसनी फैल गई है। जो काम संत-महात्मा नहीं कर पाये वह 'एड्स' की बीमारी वाले एक निहायत क्षुद्र प्राणी ने कर दिखाया। इसलिए एक बार फिर पश्चिमी स्कूलों में नैतिकता की दुहाई दी जा रही है।

मैथुन में हिंसा -

डॉ. सुरेशचन्द्र जैन ने एक बार बताया था 'मेडिकल शोध से सिद्ध हुआ है कि 25 बिन्दु वीर्य में 60 मिलियन (6 करोड़) से 110 मिलियन तक सूक्ष्म जीव

रहते हैं। उन्होंने स्वयं सूक्ष्मदर्शक यंत्र से वीर्य के जीवों को चलते-फिरते हुये देखा। जीवों का आकार (अनुमानतः) प्रायः मनुष्य जातीय सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक जीव के समान है। माता का रज एसिड (अम्ल) गुण युक्त होता है। पिता का वीर्य एल्केलाइन (क्षार) गुण युक्त होता है। संभोग में रज और वीर्य के संयोग होने पर एसिड एवं एल्केलाइन का रासायनिक मिश्रण होने के कारण जो रासायनिक प्रतिक्रिया होती है उससे उन जीवों का संहार हो जाता है। वे आगे बोले कि ''जब से मैंने आँखों से वीर्य में बिलबिलाते हुए जीवों को देखा तब से अन्तरंग में मुझे बहुत ग्लानि हुई और मैं ब्रह्मचर्य का अधिक से अधिक पालन करने लगा।''

यह आपने एक डॉक्टर के द्वारा कहा हुआ स्वयं का अनुभव पढ़ा। इस विषय को विशेष लिखने का कारण यह है कि अज्ञानता के कारण मनुष्य समाज को जो शारीरिक-मानसिक क्षति पहुँच रही है, इससे मनुष्य समाज की रक्षा हो, स्वयं की अज्ञानता का बोध हो यदि कोई एक भी मनुष्य आंशिक रूप से भी ब्रह्मचर्य को आचरण में लाये तो मेरा लिखना सार्थक होगा।

मैंने पहले ही सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्र से जाना था कि वीर्य में सूक्ष्म जीव होते हैं। जब डॉ. साहब ने बताया तब मैंने सोचा कि मैं भी परीक्षा करके देख लूँ कि जीव कैसे होते हैं और कितने रहते हैं। उसके 2-3 दिन के बाद ही सूक्ष्मदर्शक यंत्र लाकर मुझे दिखाया। यन्त्र को पहिले 50 गुना करके देखा तब हमने सूक्ष्म जीवों की राशि देखी जो किल-बिल कर रही थी। उनका आकार उस समय सूक्ष्म पुष्पराग (रेणु) के समान दिखाई दिया। पुनः 500 गुना करके देखा। उस समय उनका आकार अत्यन्त छोटे मेंढ़क के पूँछ सहित प्यूपा आकार का था। मैं बाल्य-विद्यार्थी अवस्था से ही विद्या प्रेमी, सत्य उपासक, परीक्षा प्रधानी रहा। इसलिये बहुत समय तक विभिन्न प्रणाली से देखा एवं परीक्षण किया। परीक्षण करते करते बोला-''जिस समय भौतिक-विज्ञान का नाम भी नहीं था, उस समय तथा उससे भी करोड़ों, अरबों वर्ष पहले आदिनाथ, महावीर आदि आध्यात्मिक महावैज्ञानिकों ने यह बात बिना इन्द्रियों और बिना यंत्र से आध्यात्मिक ज्योति से देखकर दुनिया के सामने रखी थी। इसको पहले कोई नहीं मानते थे। जैन शास्त्र जैसे-गोम्मट्टसार जीवकाण्ड, धवला सिद्धान्त शास्त्र, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, मोक्ष शास्त्र की टीका, श्रावकाचारादि में इसका स्पष्ट वर्णन है।''

कुछ शास्त्रों में लिखे हुए विषय को वैज्ञानिक दृष्टि से देखिये।

योनिस्तन प्रदेशेषु हृदि कक्षान्तरेष्वपि।

अतिसूक्ष्माः मनुष्याश्च जायन्ते योषिताम्।। (प्रश्नोत्तर श्रावकाचार)

अति सूक्ष्म मनुष्य जातीय जीव स्त्रियों की योनि, स्तन, हृदय, काँखादि स्थानों में होते हैं।

मेहुण सण्णारुढो मारई णवलक्ख सुहूम जीवाई।

इय जिणवरेहिं भणियं बज्झभ्यरं णिग्गंथ रूवेहिं।। (भाव संग्रह)

मैथुन संज्ञा से (काम चेतना से) उत्तेजित होकर जब मनुष्य भोग करता है, तब वह नौ लाख (900000) जीवों को मारता है, ऐसा अन्तरंग बहिरंग बन्धनों से रहित जिनेन्द्र देव ने कहा है। (कोई बताते हैं 9 लाख कोटि जीव मरते हैं। (9000000000000 जीव)

नवलक्षा जीवोऽत्रैव म्रियन्ते मैथुनेन भो।

इत्येवं जिन नाथेन प्रोक्तं केवल लोचनात्।। (प्रश्नोत्तर श्रावकाचार)

जिननाथ चिज्जयोतिमय केवल आध्यात्मिक रूपी अन्तःचक्षु से देखकर बताते हैं कि मैथुन से 9 लाख जीव मरते हैं।

णर सम्मुच्छिम जीवा लब्धिअपज्जत्तगा चैव।

मनुष्य जातीय सूक्ष्म जीव लब्धि अपर्याप्तक नियम से होते हैं। अर्थात् शरीरादि पर्याप्ति पूर्ण होने के पहले मर जाते हैं।

बारा जिले में बाइक सवार युवक को पहले ट्रैक्टर से कुचला फिर लाठियों से पीट-पीट कर मार डाला, वृद्धा की कुल्हाड़ी से हत्या

संबंध बनाने से इनकार किया तो महिला को केरोसीन डाल जलाया

तीनों मामले में आरोपी अब भी फरार, वृद्धा का पति हत्या के मामले में जेल में बंद

बारा। बारा जिले होली पर शुक्रवार को बारा जिले में हत्या की दो वारदात हुई। तीसरी वारदात शनिवार को हुई। छीपाबड़ौद कस्बे में शुक्रवार सुबह करीब 7 बजे किराए पर रहने वाले युवक ने पड़ोस की महिला को संबंध बनाने से इनकार करने पर केरोसीन डालकर जला दिया। बुरी तरह झुलसी महिला की कोटा में उपचार

के दौरान मौत हो गई। वहीं किशनगंज क्षेत्र में शे अर्जुनपुरा गाँव में रंजिशन बाइक सवार युवक को पहले ट्रैक्टर से कुचला, फिर लाठियों से पीट-पीटकर जान ले ली। तीसरी घटना शनिवार को हुई। बारा के सदर क्षेत्र में रंजिश में वृद्धा की कुल्हाड़ी मारकर हत्या कर दी गई। छीपाबड़ौद के कोली मोहल्ला निवासी महिला व उसका पति 10 साल से सती मोहल्ला निवासी मतीउद्दीन के मकान में किराए पर रहते थे। उसी मकान में मार्बल कारीगर यूपी निवासी रामभरण यादव भी 8 साल से किराए पर रह रहा था। शुक्रवार सुबह रामभरण ने विवाहिता को कमरे में बुलाया और दरवाजा बाहर से बंद कर दिया। इसके बाद रामभरण ने महिला पर संबंध बनाने के लिए दबाव बनाया। महिला ने इनकार कर दिया तो आरोपी ने केरोसीन डालकर आग लगा दी। कोटा में इलाज के दौरान उसने दम तोड़ दिया। वहीं, किशनगंज थाना क्षेत्र के अर्जुनपुरा गाँव के मुकुट मीणा व घनश्याम मीणा के परिवार में रंजिश के चलते शुक्रवार शाम को घनश्याम (30) को मुकुट मीणा पक्ष के लोगों ने पहले ट्रैक्टर से कुचला, फिर लाठियों से हमला कर बुरी तरह घायल कर दिया। वहीं, तिसाया गाँव में पुरानी रंजिश को लेकर शनिवार दोपहर कुल्हाड़ियों से खेत पर काम कर रही नटीबाई (55) पत्नी मदनलाल बैरवा की हत्या कर दी गई। नटीबाई का पति मदनलाल दूसरे पक्ष के व्यक्ति की हत्या के मामले में जेल में है।

बेटे ही बने पिता की जान के दुश्मन

छोटे भाई की पहले शादी करने पर पिता की हत्या

लाडनूँ-जसवंतगढ़ (नागौर)। नागौर जिले की लाडनूं तहसील के गाँव रोडू में एक बेटे ने अपने ही पिता की लाठियों से पीट-पीटकर हत्या कर दी। पुलिस ने बताया कि गाँव रोडू निवासी मुकेश जांगिड़ ने अपने पिता कैलाशचन्द (65) को लाठियों से पीट-पीट कर हत्या कर दी। मुकेश जांगिड़ घर में सबसे बड़ा बेटा था। इसके बावजूद पिता ने पहले छोटे भाई की शादी कर दी। इससे वह पिता से नाराज था। गुरुवार को जब कैलाशचन्द घर आया तो मुकेश जांगिड़ पहले से ही लाठी लेकर तैयार था और अपने पिता के सिर पर हमला कर दिया। इससे उनकी मौके पर ही मौत हो गई। मौके पर पहुंची पुलिस ने आरोपी मुकेश जांगिड़ को गिरफ्तार कर लिया।

भारत में बाल विवाह की दर घटने की वजह से दुनिया भर में इसकी दर 50 % घटकर 30 % पहुँची

भारत में 10 साल में 20 % कम हुए बाल विवाह, फिर भी ऐसे सबसे ज्यादा ढ़ाई करोड़ मामले हमारे देश में ही हैं : यूनिसेफ

2006 में भारत में बाल विवाह की दर 47 % थी, अब 27 %

भारत में बाल विवाह के मामलों में 10 साल में 20 प्रतिशत की कमी आई है। 10 साल पहले ये दर 47 प्रतिशत थी, जो अब 27 प्रतिशत हो गई है। इसका असर पूरी दुनिया पर पड़ा है। दुनिया भर में बाल विवाह की दर 50 प्रतिशत से घटकर 30 प्रतिशत पर आ गई है। बाल विवाह की दर का मतलब 20 से 24 साल उम्र की लड़कियाँ, जिनकी शादी 18 की उम्र से पहले हो गई थी। ये नतीजे यूनिसेफ की ओर से बाल विवाह पर जारी की गई रिपोर्ट से निकले हैं। यूनिसेफ ने इस रिपोर्ट में 2006 के आंकड़ों की तुलना 2016 से की है। इसके आधार पर ही नतीजे दिए गए हैं। हालांकि भारत में बाल विवाह की दर घटने के बाद भी 18 साल से पहले शादी करने वालों की सबसे ज्यादा 2.6 करोड़ आबादी हमारे देश में ही है। भारत में बिहार, पश्चिम बंगाल और राजस्थान ऐसे राज्य हैं, जहां बाल विवाह की दर 40 प्रतिशत से ऊपर है। वहीं इस मामले में तमिलनाडु और केरल बेहतर हैं, जहाँ ये दर 20 प्रतिशत से कम है। पाकिस्तान में 10 साल में बाल विवाह के 18 लाख मामले आए हैं।

दुनिया भर की बात करें तो पिछले 10 साल में 2.5 करोड़ बाल विवाह रोके गए। इसके बाद भी इस पर पूरी तरह रोक लगाना अभी बाकी है, क्योंकि अभी भी हर साल दुनिया में 1.2 करोड़ बाल विवाह हो रहे हैं। अभी भी हर 5 में से 1 लड़की की 18 साल से पहले शादी कर दी जा रही है। पूरी दुनिया में 65 करोड़ महिलाएँ ऐसी हैं, जिनकी शादी 18 साल की उम्र से पहले हो गई थी। रिपोर्ट के मुताबिक बाल विवाह के घटने की दर संतोषजनक है। 2050 तक दुनियाभर में ये दर गिरकर 10 प्रतिशत तक ही रहने का अनुमान है। बाल विवाह के मामले में सबसे खराब स्थिति अफ्रीकी देशों की है, जहाँ इसकी दर 40 प्रतिशत से भी ऊपर है। दुनिया में होने वाला हर 3 में से 1 बाल विवाह अफ्रीकी देशों में ही हो रहा है।

इन 5 देशों में बाल विवाह के सबसे ज्यादा मामले

भारत	2.6 करोड़
बांग्लादेश	39 लाख

नाइजीरिया	33 लाख
ब्राजील	29 लाख
इथियोपिया	19 लाख

20-24 साल के उन युवाओं की संख्या है जिनकी शादी 18 साल से पहले हो गई।

इन 5 देशों में बाल विवाह की दर सबसे ज्यादा

नाइजर	76 %
अफ्रीकन रिपब्लिक	68 %
चाड	67 %
बांग्लादेश	59 %
बुरकिना फासो	52 %

20-24 साल के युवाओं का प्रतिशत, जिनकी शादी 18 साल से पहले हो गई।

इंसानियत को शर्मसार करता बाल यौन शोषण

जानकारों का कहना है कि बाल यौन शोषण सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी बहुत बढ़ रहा है। टोक्यो में पिछले कुछ सालों में बाल यौन अपराध बहुत बढ़ गए हैं। लास एंजिलिस भी इन अपराधों से अछूता नहीं है। इंडोनेशिया में ये अपराध इतने बढ़ गए हैं कि वहाँ बाल यौन अपराधियों को रासायनिक रूप से नपुंसक बनाने की सजा का प्रावधान है। बाल यौन शोषण हमारे समाज द्वारा सामना की जाने वाली सामाजिक बुराइयों में से सबसे ज्यादा उपेक्षित बुराई है। इसकी उपेक्षा के कारण भारत में बाल यौन शोषण की घटनाएँ बहुत तेजी से बढ़ रही हैं।

देश में हर तीन घंटे में एक बच्चे का यौन-शोषण होता है। इंसानियत इस तथ्य पर शरमा जाएगी लेकिन ऐसे किस्से आए दिन अखबारों में अक्सर छपते रहते हैं। हरियाणा के गुरूग्राम के एक स्कूल में सात वर्षीय छात्र की स्कूल बस के हेल्पर ने चाकू मारकर हत्या कर दी। कारण यह था कि वह बच्चे से अश्लील हरकत करने का प्रयास कर रहा था। लोगों को आते देख उसने घबराकर बच्चे को मार डाला। इसी

तरह कुछ समय पहले महाराष्ट्र में भी ऐसी ही घटना घटी थी जो बुलढ़ाना स्थित एक आश्रम में 12 आदिवासी लड़कियों से रेप का मामला था। इस रैकेट का पता तब चला जब तेरह साल की एक बच्ची प्रेगनेंट हो गई और उसने सभी के सामने इस शर्मनाक कृत्य को उजागर कर दिया। ऐसी ही एक घटना मध्यप्रदेश के महानगर इन्दौर के एक स्कूल में हुई थी। एक बच्ची से ऐसी घृणित हरकत करने वाले दो आरोपियों पर धारा 9/20 पॉस्को अधिनियम के तहत प्रकरण पुलिस द्वारा दर्ज किया गया।

पॉस्को कानून 2012 में भारत में बच्चों को यौन हिंसा से बचाने के लिए बनाया गया ताकि बाल यौन शोषण जैसे जघन्य मामलों से निबटा जा सके। बाल अधिकार कार्यकर्ताओं का कहना है कि यह कानून बहुत ही अच्छा बना है, लेकिन इसके अमल और सजा दिलाने की दर में भारी अंतर है। यह कानून 2.4 प्रतिशत मामलों में ही अमल हुआ है। कानून विशेषज्ञ स्वाग राहा कहते हैं कि ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अक्सर पीड़ितों के अभियुक्त जो बच्चों को जानते हैं या उनके ही रिश्तेदार होते हैं तथा वे उन पर मुकर जाने का दबाव डालते हैं। भारतीय दंड संहिता ने 2012 में संसद में यौन अपराधों से बच्चों की रक्षा करने और अपराधियों को दंडित करने के लिए एक विशेष अधिनियम बनाया। इस अधिनियम से पहले गोवा बाल अधिनियम 2003 के अन्तर्गत ही अपराधियों को सजा का प्रावधान था। अब इस नए अधिनियम में बच्चों के खिलाफबेशर्मी या छेड़छाड़ के कृत्यों को भी अपराधीकरण में शामिल किया गया है। साल 2014 में बने नए कानून के तहत 8904 मामले दर्ज किए गए लेकिन इस साल नेशनल क्राइम्स रिकार्ड ब्यूरो ने बच्चों के बलात्कार के 13,766 मामले, बच्ची पर उसका शीलभंग करने के इरादे से हमला करने के 11, 335 मामले, यौन शोषण के 4,593 मामले, बच्ची को निर्वस्त्र करने के इरादे से हमला या शक्ति प्रयोग के 711 मामले, घूरने के 88 और पीछा करने के 1091 मामले दर्ज किए गए लेकिन दुखद बात यह है कि अधिकतर मामलों में पॉस्को लगाया ही नहीं गया।

जानकारों का कहना है कि बाल यौन शोषण सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी बहुत बढ़ रहा है। टोक्यो में पिछले कुछ सालों में बाल यौन अपराध बहुत बढ़ गए हैं। लास एंजिलिस भी इन अपराधों से अछूता नहीं है। इंडोनेशिया में ये अपराध इतने बढ़ गए हैं कि वहां बाल यौन अपराधियों को रासायनिक रूप से नपुंसक बनाने की सजा का प्रावधान है। बाल यौन शोषण हमारे समाज द्वारा सामना

की जाने वाली सामाजिक बुराइयों में से सबसे ज्यादा उपेक्षित बुराई है। इसकी उपेक्षा के कारण भारत में बाल यौन शोषण की घटनाएँ बहुत तेजी से बढ़ रही हैं। बाल यौन शोषण न केवल पीड़ित बच्चे पर अपना प्रभाव छोड़ती है बल्कि पूरे समाज को भी प्रभावित करता है। कई मामले तो उजागर ही नहीं होते क्योंकि इसके बारे में एक सामान्य धारणा है कि ऐसी बातें घर की चार-दिवारी के अन्दर ही रखनी चाहिए। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा 2007 में नेशनल स्टडी ऑन चाइल्ड एब्यूज इंडिया 2007 के आंकड़ें आंखें खोलने के लिए काफी हैं। इसके मुताबिक देशभर में 53.22 प्रतिशत बच्चे किसी न किसी रूप में यौन अत्याचार के शिकार हो जाते हैं।

मनोचिकित्सकों के अनुसार इस तरह के अपराधी पीडोफीलिया नामक मानसिक बीमारी से ग्रसित रहते हैं। ऐसे व्यक्ति छोटे बच्चों को अपनी यौन क्रिया की संतुष्टि के लिए निशाना बनाते हैं। ऐसे लोग नशे के आदी होते हैं। ये लोक अपनी इस घिनौनी हरकत को छुपाने के लिए हत्या तक कर देते हैं। सड़कों या रेलवे स्टेशन पर लावारिस घूमने वाले बच्चों को ऐसे बीमार व्यक्ति अपने चंगुल में ले लेता है। मनोचिकित्सकों के मुताबिक कुछ बुजुर्ग भी इस तरह की घिनौनी हरकत करने से बाज नहीं आते। कई बार माता-पिता ही बदनामी के डर से घटना को दबा देते हैं क्योंकि परिचित जाना-पहचाना होता है। चाइल्ड हेल्प लाइन के प्रमुख तपन भट्टाचार्य के अनुसार अब तक हेल्प लाइन के मुताबिक अब तक हेल्पलाइन के माध्यम से 1445 बच्चों का पुर्नवास किया गया है। इनमें से अधिकांश मामलों में बच्चे घर से इसलिए भागे थे क्योंकि उनके साथ घर के ही किसी सदस्य ने यौन शोषण किया था।

ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि इस मनोविकार को जड़ से ही नष्ट किया जा सकता है लेकिन मनोचिकित्सकों के मुताबिक थोड़ी सावधानी बरती जाए तो ऐसे अपराधों पर बहुत हद तक अंकुश लग सकता है। पेरेन्ट्स को चाहिए कि वे अपने बच्चों को ज्यादा समय के लिए अकेला न छोड़ें। उन्हें अपने बच्चों के साथ लगातार संवाद स्थापित करना चाहिए। उनकी छोटी-छोटी शिकायतों पर भी पूरा ध्यान एवं सावधानी बरतनी चाहिए। टालने की आदत घातक हो सकती है। बच्चा जरा भी गंभीर या अनमना-सा लगे तो उससे कारण पूछना चाहिए। बच्चों से दोस्ताना व्यवहार भी जरूरी है। स्कूल में बच्चों के गलत रास्ते में पड़ने की संभावना रहती है। ऐसे में पेरेन्ट्स को पता लगाते रहना चाहिए कि बच्चे के दोस्त कौन हैं? वे कहाँ जाते-आते रहते हैं? पेरेन्ट्स चाहे कितने आधुनिक हों लेकिन वे बच्चे को बुनियादी नैतिकता की

शिक्षा जरूर देते रहें। बच्चों के लिए यह जरूरी है कि वे अपने आसपास के लोगों द्वारा अपने साथ किए गए व्यवहार की जानकारी माता-पिता को देते रहे। ऐसे अपराध करने वाला व्यक्ति एकान्त ढूंढ़ता है। यदि बच्चों को कोई अनजान आदमी या औरत भी किसी एकांत जगह ले जा रहे हों तो बच्चों को नहीं जाना चाहिए। जरूरत पड़ने पर वे शोर भी मचा सकते हैं। बच्चों को बहलाने-फुसलाने के लिए ऐसे मनोरोगी लालच देते हैं, बच्चों को ऐसे लालच में नहीं पड़ना चाहिए। स्कूलों को चाहिए कि वे स्कूल का विशेषकर निचले स्तर का स्टॉफ का चयन बहुत सावधानीपूर्वक करें। ऐसे कर्मचारियों का इतिहास तथा परिवेश का जानना बेहद जरूरी है। स्कूल वाले पहले पता कर लें कि उनके कर्मचारी कहीं नशे के आदती तो नहीं हैं। स्कूलों को कर्मचारियों पर पूरे समय नजर रखना चाहिए। कक्षा में हफ्ते में कम से कम एक बार संवाद का पीरियड भी रखा जा सकता है। इससे बच्चे अपने मन की बात खुलकर टीचर के सामने बता सकते हैं। किसी बच्चे के साथ यदि यौन अपराध की घटना होती है तो समाज के जिम्मेदार लोगों को तत्काल उसके खिलाफ लयबद्ध होना चाहिए। 'अपने को क्या लेना-देना' की प्रवृत्ति से यह विकृति और बढ़ सकती है। पुलिस को चाहिए कि ऐसे अपराध में ढ़ील-पोल नहीं बरते।

त्यजनीय व ग्रहणीय

(चाल : दुल्हे का सेहरा...)

- आचार्य कनकनन्दी

बन्द आँखों से चाक्षुष भी न दिखता है।
अन्धश्रद्धा से स्व-आत्मा न दिखता है।।
यथा अन्धेरेमें ग्रन्थ न पढ़ पाते।
तथा मोही स्वयं को न जान पाते हैं।। (बन्द) (1)

जन्मान्ध यथा सूर्य न देख पाते।
मोहान्ध सत्य को न जानते हैं।।
भोजन भी सड़ने से विषाक्त होता है।
धर्म का दुरुपयोग विषमता लाता है।। (बन्द) (2)

आत्मश्रद्धान रहित जीव कुधर्मी।

समता रहित जीव होते अधर्मी।।
धर्मफल है शान्ति अधर्म अशान्ति।
धर्म स्वरूप आत्मविशुद्धि फल है शान्ति।। (बन्द) (3)

राग-द्वेष-मोह है अधर्म स्वरूप।
शुद्ध-बुद्ध-आनन्द धर्म-स्वरूप।।
धर्म पाना है तो राग द्वेष मोह त्यागो।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा दंभ प्रपंच त्यागो।। (बन्द) (4)

आत्मविशुद्धि हेतु ही धर्म पालनीय।
इस हेतु बाह्य निमित्त भी ग्रहणीय।।
तत्त्वचिन्तन शोध-बोध करणीय।
मैत्री प्रमोद कारुण्य साम्य वरणीय।। (बन्द) (5)

दिखावा-ढोंग-आडम्बर-दंभ त्यजनीय।
शालीन-नम्र-उदार-धैर्य धारणीय।
स्वतंत्र-स्वावलम्बन चर्या आचरणीय।
स्व-परविश्व हित चिन्तन करणीय /(भावनीय)।। (बन्द) (6)

आत्मतृप्तिमय आत्म विकास करणीय।
अरुत-व्यस्त-संत्रस्त विकास त्यजनीय।
अन्त्योदय से सर्वोदय तक भजनीय।
शुद्धात्मास्वरूप 'कनक' ग्रहणीय।। (बन्द) (7)

सागवाड़ा 23.04.2018 रात्रि 9.06

श्रुत पञ्चमी के उपलक्ष्य में

कर रहा हूँ जिनवाणी का ज्ञानामृतपय पान
मैं जिनवाणी से स्व/(मैं) का अध्ययन कर रहा हूँ!
(स्वाध्याय का स्वरूप व फल)

(चाल : आधा है चन्द्रमा..., करता हूँ वन्दना आदि स्वामी....)

- सृजेता- आचार्य कनकनन्दी

करता हूँ स्वाध्याय जिनवाणी..2..आत्म तत्त्व बोधक दिव्यवाणी...(ध्रुव)...

इससे सत्य-असत्य जाना...हेय-उपादेय को भी माना...
ज्ञान-ज्ञेय भी इससे जाना... पाप-पुण्य से ले मोक्ष जाना...
द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ भी जाना...आत्मा से परमात्मा तक जाना...(1)...करता हूँ स्वाध्याय...

स्व-अध्ययन को स्वाध्याय माना...इस हेतु पर को भी जाना...
यह है परम भेद-विज्ञान...यह परम सत्य का ज्ञान...
आध्यात्मिक यह सम्यग्ज्ञान...यह है भावश्रुतमय ज्ञान...करता(2)...
इससे होता सही श्रद्धान...मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध-आनन्दघन...
मैं हूँ स्वयम्भू-स्वयंपूर्ण...अनन्त गुण गण परिपूर्ण...
द्रव्य-भाव-नोकर्म से शून्य...सत्-चित्-आनन्द गुणगण... करता...(3)

अनादि कर्मों से आबद्ध...जिससे बना हूँ मैं अशुद्ध...
कर्मनाश से बनूँ मैं शुद्ध...इस हेतु हूँ पुरुषार्थरत...
अनात्मभाव कर रहा हूँ त्याग...उपादेय सत्य में दत्तचित्त...करता...(4)

समता-शान्ति व आत्म विशुद्धि...निस्पृह-निराडम्बर-मौनवृत्ति...
ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व त्याग...आत्मानुशासन-आत्मानुभव...
मनन-चिन्तन व शोध-बोध...अध्यापन-लेखन व ध्यान...करता...(5)

सभी करता हूँ आत्म केन्द्रित...आत्मा द्वारा आत्मा में स्थित...
ये हैं मेरे परम तप-ध्यान...संवर-निर्जरा हेतु प्रधान...
तीर्थयात्रा पूजा व आराधना...स्वाधीन निरवद्य साधना...करता...(6)...

शिष्य-भक्त भी पाते हैं लाभ...बिना आडम्बर बिना धन...
अपेक्षा-प्रतीक्षा भी न होती...धर्म/(ज्ञान) प्रभावना निरवद्य होती...
जिनवाणी ज्ञानामृत पयपान...'कनक' कर रहा हो निमग्न...करता...(7)

सागवाड़ा दि. 13.04.2018, रात्रि 8.58

जैन धर्म की आध्यात्मिकता की सूक्ष्मता व अलौकिकता

(चाल : छोटी-छोटी गैया....2. क्या मिलिए....)

- आचार्य कनकनन्दी

सम्यक्त्व बिन न होता आत्मविश्वास, स्वशुद्धात्मा श्रद्धान से होता आत्मविश्वास।

इसके बिना जो माने आत्मविश्वास, वह है इच्छा या निदान स्वरूप।।1

सम्यक्त्व से होता है सम्यग्ज्ञान, सम्यग्ज्ञान से होता है भेदविज्ञान।।
इसके बिन जो होता है ज्ञान, वह है जानकारी या मिथ्याज्ञान।।2

इन से युक्त होता है सम्यग्चारित्र, स्वशुद्धात्मा प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ।
इससे भिन्न होता है मिथ्याचारित्र, लौकिक आचरण या कुपुरुषार्थ।।3

आत्मविश्वास से हेाता स्वधर्म/(सुधर्म) आरम्भ, अन्यथा कुधर्म या बाह्याडम्बर।
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र सहित होते हैं मोक्षमार्गी या मुमुक्षु।।...4

उत्तम क्षमादि होते श्रमणधर्म, श्रावक पाले जो सो आंशिक धर्म।
तथाहि सोलहकारण व बारह भावना, पंचव्रत से ले सभी धर्म साधना।।5

अन्यथा न होते उत्तम क्षमादि धर्म, जो होते वे होते बाह्याचार धर्म।
मन्द कषाय व शुभ लेश्या से होते, विवशता या संकीर्ण स्वार्थ से होते।।6

स्वाध्याय है स्वशुद्धात्मा का ज्ञान/(अध्ययन), भावश्रुत ही है सही स्वाध्याय।
इस हेतु है द्रव्यश्रुत अध्ययन/(ज्ञान), ध्यानावस्था में यथार्थ भेदज्ञान।।7

समता ही है परमसम्यग्चारित्र, मोह क्षोभ रहित शुद्धात्मा भाव।
शुद्धात्माभाव ही है परमस्वधर्म, इसके बिना सभी है पर धर्म।।8

स्वधर्म ही है संवर निर्जरा, तप त्याग व ध्यान आराधना।
स्तुति वंदना प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान, मोक्षमार्ग से लेकर परिनिर्वाण।।9

इस हेतु ही देव-शास्त्र-श्रद्धान, दान दया पूजा तीर्थ वन्दन।
श्रावक से ले मुनि धर्म पालन, गुणस्थान आरोहण व मोक्षगमन।।10

नीति-नियम कानून संविधान, लौकिक मर्यादा से परामनोविज्ञान।
पंथ-मत व रुढ़ि परम्परा परे, कला संगीत व भौतिक विज्ञान परे।।11

इस हेतु चक्री भी बनते श्रमण, तीर्थंकर मुनि भी करते ध्यान।
सत्य-शिव-सुन्दर अमृतधाम, इस हेतु 'कनकनन्दी' बना श्रमण।।12

सागवाड़ा दि. 18.04.2018 रात्रि 8:54